ॐ

योग-साधन-माला, पुष्प २

सानुवाद-योगदर्शन

लेखक और प्रकाशक—

श्रीस्वामी अभयानन्द सरस्वती,

योगमण्डल, बनारस सिटी।

द्वितीयवार ६००] सं० १९९३ वि० [मू० ॥=) आ०



ऋग्वेद का सर्वाङ्ग सुन्दर मुद्रण



बड़े हर्ष की बात है कि स्वाध्याय मंडल, औंध जिला सातारा द्वारा चारो वेदों के अति शुद्ध, अत्यन्त सस्ते और अत्यन्त उत्तम तथा निर्दोष, ऐसे सर्वाङ्ग सुन्दर मुद्रण कराने का प्रबन्ध हुवा है। सबसे प्रथम ऋग्वेद का प्रकाशन होने जारहा है तत्पश्चात् यथाक्रम अन्य वेदों का भी प्रकाशन होगा। जिसके हृदय में ऋग्वेद-विद्या के विषय में प्रेम है, उसको यह पुस्तक अपने घर में तथा अपने पास रखना अत्यन्त आवश्यक है। ऋग्वेद के छपाई का अनुमानिक व्यय ६०००) रु० होगा और २००० पुस्तक मुद्रित किये जांयगे। अर्थात् प्रत्येक पुस्तक का लागत व्यय ३) रु० होगा। तथापि एक दानी महोदय ने ऋग्वेद सस्ता बिकने के लिये २०००) रु० का दान दिया है उसे घटाने पर ४०००) रु० दो सहस्र पुस्तकों पर पड़ेगा और प्रत्येक सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) रु० तथा रजिस्ट्री डाक व्यय १) रु० अर्थात् पेशगी ३) रु० प्रथमही मनिआर्डर द्वारा भेजने वाले को प्राप्त होगा। जो सज्जन मिलकर २५ अथवा अधिक पुस्तक रेल द्वारा मगाना चाहेंगे वे प्रति पुस्तक पर ।) आ० अर्थात् प्रत्येक पुस्तक के लिये २।) रु० के हिसाब से रकम निम्न पते पर भेजें:—

२५ पुस्तकों के लिये ५६।) रु०, ५० प्रति के लिये ११२॥) रु०, १०० प्रति के लिये २२५) रु०। इस तरह पेशगी मूल्य निम्न पते पर भेज देने से लागत से भी कम मूल्य पर ये पुस्तक दिये जांयगे।

पता—प्रबन्धकर्ता स्वाध्याय मंडल औंध,

जि० सातारा।

—— * ——

भूमिका

योग आदि समस्त विद्याओं के भण्डार वेद भगवान् हैं जो साक्षात् परम गुरु परमात्मा का सच्चा ज्ञान है, इसलिये योग के आदि गुरु और प्रथम उपदेष्टा परमात्मा हैं जैसा स्वयं वेदमंत्र में लिखा है।

युञ्जन्तिब्रध्नमरुषंचरन्तंपरितस्थुषःरोचन्ते रोचना-दिवि ॥ ऋ० अ० १ । व० ११ मं १ ॥०

अर्थ—जो उपासक (ब्रध्नं) बड़े को (अरुषं) हिंसा रहित (परितस्थुषः चरन्तं) मनुष्यों के हृदय को जाननेहारे परमेश्वर को (युञ्जन्ति) योग द्वारा अपने आत्मा में जानते हैं (रोचना) प्रकाश द्वारा (दिवि) सूर्य्य के प्रकाश में (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं। इसी आशय को [illegible] योगीराज पतञ्जलि भगवान् लिखते हैं:—

सएषपूर्वेषामपिगुरुःकालेनानवच्छेदात् ॥ यो० पा० १ सू० २६ ॥

वह परमेश्वर पूर्व ऋषियों का भी गुरु है क्योंकि वह कालचक्र से रहित है। अस्तु, पहले ही पहल परमात्मा ने वेदों के द्वारा सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों (अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा) द्वारा योग का उपदेश किया। श्री ब्रह्मा से अन्य ऋषि मुनियों ने योग विद्या सीखी। उससे महर्षि पतञ्जलि ने इसको पढ़कर और पूर्ण अभ्यास करके योगदर्शन नाम से प्रसिद्ध

किया, जो वर्तमान सर्व ग्रन्थों में मान्य माना जाता है। पतञ्जलि मुनि की प्रशंसा में किसी कवि ने ठीक कहा है। कि :—

योगेनचित्तस्यपदेनवाचांमलंशरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरंमुनीनांपतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

अर्थ—जिस पतञ्जलि मुनि ने योगशास्त्र के मानसिक व्याकरण शास्त्र से वाचिक और वैद्यक शास्त्र से शारीरिक (एवं तीनों शास्त्रों से कायिक-वाचिक-मानसिक) मल दूर किया उसको हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं।

इनके योगदर्शन में केवल १९४ सूत्र और चार पाद निम्न-प्रकार हैं :—

(१) **समाधिपाद्**—जिसमें समस्त पुस्तक का सार सूत्र रूप में ज्ञानात्मक (Theoretical) है इसमें ५१ सूत्र हैं।

(२) **साधनपाद्**—इसमें क्रिया योग (Practical) है, इसमें ५५ सूत्र हैं।

(३) **विभूतिपाद्**—इसमें योग का फल रूप विभूति तथा अष्ट सिद्धि का वर्णन है, इसमें ५४ सूत्र हैं।

(४) **कैवल्यपाद्**—इसमें केवल मोक्ष का वर्णन समस्त पुस्तक का निचोड़ निगमन रीति पर वर्णित है, इसमें ३४ सूत्र हैं।

यद्यपि यह दर्शन बहुत छोटा है, तथापि सूत्रकारों की शैली के अनुकूल इसमें बड़े विशाल विषय का वर्णन है। योग दर्शन (Philosofi) है, जिसको जान कर तदनुकूल पूर्ण बर्ताव करने से मनुष्य मोक्ष तक प्राप्त कर सकता है, परन्तु यदि पूर्ण साधन न भी कर सके तो और योग के किसी

एक भी अङ्ग का साधन कर पावे तो इस लोक में एक उत्तम पुरुष धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाला अनेक दुःखों से जो चित्त के अव्यवस्थिततत्वादि से होते हैं, बचनेवाला सुख से जीवन व्यतीत कर सकता है, अन्त को जन्मान्तर में भी अच्छे जाति, आयु और भोग पाता है और फिर उन जन्मान्तरों में योग का अभ्यास करता रहे तो "अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो यान्ति परांगतिम्" अनुसार अनेक जन्मों की सिद्धियें पाता पाता अन्त में कभी मोक्ष पा जाता है।

यद्यपि योग शास्त्र पर कई एक ग्रन्थ भाषा में लिखे जा चुके हैं तथापि कई महानुभावों की संमति से वैदिक सिद्धान्तानुसार अपने अनुभव द्वारा योगाभिलाषियों के हितार्थ मैंने भी उक्त दर्शन के सूत्रों को भाषा में अनुवाद किया है। परम योगीश्वर सच्चिदानन्दानन्त स्वरूप से प्रार्थना है कि योग प्रचार में मुझे तथा अन्य योगाभ्यासियों को उत्साह देकर कृत कार्य्य करे। शमित्योम्।

अभयानन्द सरस्वती।



योगदर्शन की विषय सूची

॥ सवैया ॥

पाद समाधि है आदि विषे, इस में मन का सब संयम कीना ।
पूरक, रेचक, कुम्भक से गति, प्राण को साधन में गह लीना ॥
पाद विभूति सुसंयम ने लघु, चेतन को सगरो बल दीना ।
पाद तुरीय अनूप अहा जिससे चिति वारिधि को रस पीना ॥

सं० विषय

(प्र० समाधि पाद)

१ योग का लक्षण ।
२ चित्त की पाँच वृत्तियों का वर्णन ।
३ निरोध का स्वरूप ।
४ अपर तथा पर वैराग्य का स्वरूप ।
५ बिदेह और प्रकृतिलय ।
६ योगियों के नव भेद ।
७ असम्प्रज्ञात समाधि ।

(द्वि० साधन पाद)

८ क्रिया योग का वर्णन ।
९ पञ्च क्लेशों का वर्णन ।
१० 'दृश्य' प्रकृति का स्वरूप ।
११ बुद्धि और जीव का संबन्ध ।
१२ जीव के संबंध का हेतु संयोग
१३ संयोग के हेतु अविद्या का वर्णन ।
१४ वासना रूप से अविद्या का अनादित्व ।
१५ योग के अष्टाङ्गों का वर्णन ।

सं० विषय

१६ प्राणायाम का प्रकार ।
१७ इन्द्रिय वशीभूत करनेवाले प्रत्याहार का वर्णन ।

(तृ० विभूति पाद)

१८ समाधि का लक्षण ।
१९ विभूतियों के साधन भूत संयम ।
२० विभूतियों का निरूपण ।
२१ अणिमादि सिद्धियों का वर्णन

(च० कैवल्य पाद)

२२ पाँच प्रकार के चित्तों का वर्णन ।
२३ मोक्ष के उपयोगी चित्त का वर्णन ।
२४ चित्त और जीवात्माके ।
२५ धर्ममेघ समाधिका उपाय ।
२६ कैवल्य के स्वरूप का निरूपण
२७ मुक्तावस्था में चित्त के लय का प्रकार ।
२८ मुक्तावस्था में ब्रह्मानन्द के उपभोग का निरूपण ।

पातञ्जल योगसूत्रम्

समाधिपादः ।

अथ योगानुशासनम् ॥१॥ योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥२॥ तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥३॥ वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥४॥ वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥५॥ प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥६॥ प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥७॥ विपर्य्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥८॥ शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥९॥ अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥१०॥ अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ॥११॥ अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥१२॥ तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥१३॥ स तु दीर्घकालनैरन्तर्य्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ॥१४॥ दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥१५॥ तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥१६॥ वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात्सम्प्रज्ञातः ॥१७॥ विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥१८॥ भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥१९॥

श्रद्धावीर्य्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २० ॥
तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥ मृदुमध्याधिमात्रत्वात्त-
तोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥ ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥
क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः
॥ २४ ॥ तत्र निरतिशयं सर्वज्ञत्व बीजम् ॥ २५ ॥ स
एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ २६ ॥ तस्य
वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥ तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥
ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ २९ ॥
व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादाऽलस्याऽविरतिभ्रान्तिदर्शना-
ऽलब्धभूमिकत्वाऽनवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्त-
रायाः ॥ ३० ॥ दुःखदौर्मनस्याऽङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा
विक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥ तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः
॥ ३२ ॥ मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य-
विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥ प्रच्छर्दन-
विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥ विषयवती वा
प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति-निबन्धिनी ॥ ३५ ॥ विशोका
वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥ वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ ३७ ॥
स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ ३८ ॥ यथाभिमतध्यानाद्वा
॥ ३९ ॥ परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥
क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थ-
तदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥ तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः

सङ्कीर्णा सवितर्का ॥४२॥ स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्ये-वार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥४३॥ एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥४४॥ सूक्ष्म-विषयत्वञ्चालिङ्गपर्य्यवसानम् ॥४५॥ ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥ निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥४७॥ तत्र ऋतम्भरा प्रज्ञा ॥ ४८ ॥ श्रुतानुमान प्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषत्वात् ॥४९॥ तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥ ५० ॥ तस्यापि निरोधे सर्व-निरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ ५१ ॥

साधनपादः ।

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि "क्रियायोगः" ॥१॥ समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥ अवि-द्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥ ३ ॥ अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥ अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्याति-रविद्या ॥ ५ ॥ दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥ सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥ दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥ स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥ ९ ॥ ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥ ध्यानहे-

यास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥ क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट-
जन्मवेदनीयः ॥ १२ ॥ सति मूले तद्विपाको जात्या-
युर्भोगाः ॥ १३ ॥ ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्य-
हेतुत्वात् ॥ १४ ॥ परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुण-
वृत्तिविरोधाच्च सर्वमेव दुःखं विवेकिनः ॥ १५ ॥ हेयं
दुःखमनागतम् ॥ १६ ॥ द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेय-
हेतुः ॥ १७ ॥ प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं
भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥ विशेषाविशेषलिङ्ग-
मात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ १९ ॥ द्रष्टा दृशिमात्रः
शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥ तदर्थ एव दृश्यात्मा
॥ २१ ॥ कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारण-
त्वात् ॥ २२ ॥ स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः
संयोगः ॥ २३ ॥ तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥ तदभा-
वात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २५ ॥
विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥ तस्य सप्तधा
प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २७ ॥ योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये
ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥ २८ ॥ यमनियमास-
नप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि
॥ २९ ॥ अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः
॥ ३० ॥ एते जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्व-
भौमा महाव्रतम् ॥ ३१ ॥ शौचसन्तोषतपःस्वाध्याये-

श्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ ३२ ॥ वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥ वितर्का हिंसादयः कृत-कारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधि-मात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३४ ॥ अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥ सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥ अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्म-चर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः ॥ ३८ ॥ अपरिग्रहस्थैर्य्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ॥ ३९ ॥ शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सापरै-रसंसर्गः ॥ ४० ॥ सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजया-त्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥ ४१ ॥ सन्तोषादनुत्तमसुख-लाभः ॥ ४२ ॥ कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥ स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ॥ ४४ ॥ समाधिसिद्धिरीश्व-रप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥ स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥ प्रयत्न-शैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥ ततोद्वन्द्वानभि-घातः ॥ ४८ ॥ तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिवि-च्छेदः प्राणायामः ॥ ४९ ॥ बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्ति-र्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ५० ॥ बाह्या-भ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥ ततः क्षीयते प्रका-शावरणम् ॥ ५२ ॥ धारणासु च योग्यता मनसः ॥ ५३ ॥ स्वस्वविषयसम्प्रयोगाभावे चित्तस्वरूपानुकार

इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥ ततः परमावश्य-
तेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

विभूतिपादः ।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥ तत्र प्रत्ययैक-
तानता ध्यानम् ॥ २ ॥ तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप
शून्यमिव समाधिः ॥ ३ ॥ त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥
तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥ तस्य भूमिषु विनियोगः
॥ ६ ॥ त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥ तदपि बहिरङ्गः
निर्बीजस्य ॥ ८ ॥ व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभव-
प्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः
॥ ९ ॥ तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥ सर्वा-
र्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः
॥ ११ ॥ ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यै-
काग्रतापरिणामः ॥ १२ ॥ एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्म-
लक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ १३ ॥ शान्तो-
दिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ १४ ॥ क्रमान्यत्वं
परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥ परिणामत्रयसंयमाद-
तीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥ शब्दार्थप्रत्ययानामितरेत-
राध्यासात्सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम्

॥ १७॥ संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥१८॥ प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १६ ॥ कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भेचक्षुः प्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥ २० ॥ एतेन शब्दाद्यन्तर्धानम् ॥ २१ ॥ सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ २२ ॥ मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥ बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥ प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २५ ॥ भुवनज्ञानं सूर्य्ये संयमात् ॥ २६ ॥ चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥ ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥ नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २६ ॥ कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥ कूर्मनाड्यां स्थैर्य्यम् ॥ ३१ ॥ मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥ प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३३ ॥ हृदये चित्तसंवित् ॥ ३४ ॥ सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोःप्रत्ययाविशेषाद्भोगः परार्थत्वादन्यस्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ॥ ३५ ॥ ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्त्ता जायन्ते ॥ ३६ ॥ ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥ बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥ ३८ ॥ उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३६ ॥ समानजयाज्ज्वलनम् ॥ ४० ॥ श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ४१ ॥

कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाश-
गमनम् ॥४२॥ बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः
प्रकाशावरणक्षयः ॥४३॥ स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थव-
त्त्वसंयमाद्भूतजयः ॥ ४४ ॥ ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः
कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ४५ ॥ रूपलावण्यबल-
वज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥४६॥ ग्रहणस्वरूपा-
स्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥ ४७ ॥ ततो
मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥४८॥ सत्त्व-
पुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्व-
ज्ञातृत्वं च ॥ ४९ ॥ तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये
कैवल्यम् ॥५०॥ स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं
पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥ ५१ ॥ क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्वि-
वेकजं ज्ञानम् ॥५२॥ जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छे-
दात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥५३॥ तारकं सर्वविषयं
सर्वथाविषयमक्रमञ्चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५४ ॥
सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ॥ ५५ ॥

कैवल्यपादः ।

जन्मौषधिमन्त्रतपः"समाधिजाः सिद्धयः" ॥ १ ॥
जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥ निमित्त-

प्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥३॥ निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥४॥ प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥५॥ तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥ कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥७॥ ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥ जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्य्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥ तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥ १० ॥ हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥११॥ अतीतानागतंस्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥१२॥ ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥१३॥ परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ॥ १४ ॥ वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥१५॥ न चैकचित्ततन्त्रं चेद्वस्तु तत्प्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥१६॥ तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञानम् ॥ १७ ॥ सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभो पुरुषस्यापरिणामात् ॥१८॥ न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥१९॥ एकसमये चोभयानवधारणम् ॥२०॥ चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥२१॥ चितेरप्रतिसङ्क्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥२२॥ द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ २३ ॥ तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥२४॥

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ॥ २५ ॥ तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भावं चित्तम् ॥ २६ ॥ तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥२७॥ हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥ २८ ॥ प्रसङ्ख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथाविवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥ २९ ॥ ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ३० ॥ तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥३१॥ ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ३२ ॥ क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥३३॥ पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति ॥ ३४ ॥



ॐ

अथ योगदर्शन भाषानुवादः

❀ समाधि-पादः ❀

अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥

अब योग शास्त्र (आरम्भ करते हैं) ॥ १ ॥

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ॥ २ ॥

चित्त की वृत्तियों का रोकना योग है ॥ २ ॥

तदा द्रष्टुःस्वरूपेऽवस्थानम् ॥ ३ ॥

तब देखनेवाले जीवात्मा की अपने स्वाभाविक चैतन्य रूप में स्थिति हो जाती है ॥ ३ ॥

वृत्ति सारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥

अन्य अवस्था में वृत्तियों के समान रूप होता है ॥ ४ ॥

वृत्तयःपञ्चतय्यःक्लिष्टाऽक्लिष्टाः ॥ ५ ॥

वृत्तियाँ पांच है क्लिष्ट और अक्लिष्ट से दो प्रकार की हैं। तात्पर्य यह है कि "जिन वृत्तियों के उदय होने से पुरुष के भावी जन्म आरम्भ होता है उनको क्लिष्ट और जिनके उदय होने से मनुष्य के भावी जन्म का उदय नहीं होता अर्थात् जिनसे पुरुष मुक्तावस्था को प्राप्त हो जाता है उनको अक्लिष्ट कहते हैं" ॥ ५ ॥

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥ ६ ॥

१ प्रमाण वृत्ति, २ विपर्यय वृत्ति, ३ विकल्प वृत्ति, ४ निद्रा वृत्ति और ५ स्मृतिवृत्ति हैं ॥ ६ ॥

तत्र प्रत्यक्षानुमानाऽगमाःप्रमाणानि ॥ ७ ॥

उन (पांच) में से प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम [वेद व वेदानुकूल ग्रंथ] (ये तीन) प्रमाण वृत्तियाँ हैं ॥ ७ ॥

विपर्ययोमिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥ ८ ॥

वस्तु के स्वरूप से भिन्न स्वरूप में ठहरने वाला (अन्य में अन्य बुद्धि रूप) मिथ्या ज्ञान 'विपर्यय' है। जैसे —रज्जू में सर्प, सीप में मोती इत्यादि ॥८॥

शब्दज्ञानानुपातीवस्तुशून्योविकल्पः ॥ ९ ॥

शब्द ज्ञान (मात्र) पर गिरने वाला (परन्तु) वस्तु से शून्य विकल्प कहाता है। तात्पर्य :-जो ज्ञान वस्तु नाम विषय से रहित हो अर्थात् जिस ज्ञान का विषय कुछ न हो और शब्द ज्ञान से उत्पन्न हो जाय उसको विपर्यय कहते हैं। जैसे— वन्ध्या का पुत्र, आकाश के फूल इत्यादि ॥ ९ ॥

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

अभाव की प्रतीति का सहारा लेनेवाली वृत्ति निद्रा है। तात्पर्य यह हुआ कि "जिस समय बुद्धि में तमो गुण आविर्भूत होकर सत्वगुण, रजोगुण तथा वाह्येन्द्रियों को आच्छादन कर लेता है उस समय वाह्य अर्थों के साथ सम्बन्ध न रहने के कारण उनको विषय करने वाली सम्पूर्ण वृत्तियों के निवृत्ति हो जाने से केवल तमोगुण का विषय करनेवाली जो चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है उसको निद्रा कहते हैं" ॥ १० ॥

अनुभूत विषयाऽसम्प्रमोषःस्मृतिः ॥ ११ ॥

पूर्व अनुभव किये हुये विषय के संस्कार से उसी विषय में होने वाले ज्ञान का नाम स्मृति है अर्थात् पूर्व प्रत्यक्षादिप्रमाणों से जितने अर्थ का अनुभव हुआ है उतनेही अर्थ को विषय करने वाली संस्कार जन्य चित्तवृत्तिका नाम स्मृति है। [अब चित्तवृत्तियों के निरोध (रोकने) का उपाय कहते हैं] ॥ ११ ॥

अभ्यास वैराग्यभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥

(बार २ रोकने के) अभ्यास और वैराग्य से उन (चित्त वृत्तियों) का निरोध होता है ॥ १२ ॥

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥

उन (अभ्यास वैराग्य, दोनों में से ठहराव का यत्न करना अभ्यास कहाता है ॥ १३ ॥

सतुदीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितौदृढभूमिः ॥१४॥

और वह दीर्घकाल, निरन्तर तथा ब्रह्मचर्य आदि से अनुष्ठान किया हुआ दृढ़ भूमि हो जाता है। "दीर्घकाल" का तात्पर्य मरण पर्यन्त का है और "नैरन्तर्य" पद का अर्थ सुषुप्ति पर्यन्त भी त्रुटि का न होना और "सत्कार" पद का अर्थ तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा आदि है ॥ १४ ॥

दृष्टाऽनुश्रविकविषयवितृष्णस्यवशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १५ ॥

देखे और (शास्त्र) से सुने विषयों की तृष्णा से रहित (चित्त का) वशीकार वैराग्य है। अर्थात् अन्न पान मैथुनादि सांसारिक और मरणानन्तर अन्य जन्मों, अन्य लोकों तथा अन्य योनियों में शास्त्रानुसार मिलने वाले पारलौकिक विषयों में से उनका असारता जानकर चित्त का हटाना वैराग्य कहाता

है। जब ज्ञान बढ़ता है तो जो विषय सुखदायक जान पड़ते थे वे फिर दुःखदायक क्या दुःख रूप ही दीखने लगते हैं और इस प्रकार विषयों में दोष दीखने से उनका राग जाता रहता और वैराग्य उत्पन्न होने लगती है। जैसे कि सांख्य में कहा है कि **"नदृष्टात्तत्सिद्धि निवृत्तेप्यनु वृत्ति दर्शनात्"** मनुष्य के अध्यात्मिकादि तीन प्रकार के दुःखों की निवृत्ति रूप सिद्धि सांसारिक दृष्ट पदार्थों से नहीं हो सकती, क्योंकि उनसे दुःख निवृत्ति ही तत्काल पुनः दुःख की अनुवृत्ति देखते हैं ॥ १५ ॥

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

विवेक ज्ञान से सत्वादि गुणों में होने वाली इच्छा की निवृत्ति को पर वैराग्य कहते है ॥ १६ ॥

वितर्कविचारानन्दाऽस्मितारूपानुगमात्संप्रज्ञातः ॥ १७ ॥

वितर्क, विचारा, आनन्द और अस्मिता के रूप को क्रम पूर्वक पाने से संप्रज्ञात समाधि वा योग होता है। तात्पर्य यह है कि किसी स्थूल पदार्थ में [illegible] वितर्क, सूक्ष्म इन्द्रियातीत विषय में मन ल[illegible] विचार, हर्ष मनाना आनन्द और "मैं एक आत्मा देहादि से [illegible] हूं" इसमें मन लगाना अस्मिता कहाती है ॥ १८ ॥

विरामप्रत्ययाऽभ्यासपूर्वः संस्कार शेषोऽन्यः ॥ १८ ॥

जिससे पूर्व विराम प्रत्यय (चित्त वृत्तियों के अवसान मात्र) का अभ्यास करते २ संस्कार मात्र शेष रह जाते हैं वह अन्य (दूसरा असंप्रज्ञात) योग (समाधि) है। अवसान का अर्थ

विराम, समाप्ति, आखीर, हद्द है अर्थात् जिसमें समस्त चित्त वृत्ति अस्त को प्राप्त हो जाती है, ऐसे प्रत्यय (प्रतीत वा ज्ञान) का बार बार अभ्यास करना चाहिये। यह अभ्यास परम वैराग्य से होता है ॥ १८ ॥

भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम् ॥ १९ ॥

जो देह छोड़ देते और जो प्रकृति में लय को प्राप्त करते हैं उनको "भवप्रत्यय" नाम (असंप्रज्ञात समाधि) सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि "मनुष्य देह को त्यागकर जो विदेहत्व को प्राप्त हैं, भवप्रत्यय (भव = जन्म का प्रत्यय = ज्ञान मात्र जिनमें रह गया है, यह कि "जन्म था" यह तो) विदेहों को प्राप्त होता है, जब तक देह है, तब तक नहीं प्राप्त होता। दूसरे जिन्होंने प्रकृति में चित्त को लय कर दिया हो उन्हें भी "भवप्रत्यय" समाधि सिद्ध हो जाता है और जब तक चित्त अपने अधिकार (वश) में रहा प्रकृति में लीन रहा तब तक समाधि बना रहता है। हां, जब चित्त अपने अधिकार से निकलता है, तब वह समाधि खुल जाता है। ये दोनों प्रकार के पुरुष (विदेह और प्रकृतिलय) कैवल्य की तरह अनुभव करने लगते है। ऐसा व्यास भाष्य का मत है ॥ १९ ॥

श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २० ॥

अन्यों (विदेहों और प्रकृतिलयों से भिन्नों) को श्रद्धा, वीर्य स्मृति, समाधि और प्रज्ञापूर्वक (उपाय प्रत्यय नामक दूसरा "असंप्रज्ञात" योग) होता है। तात्पर्य—प्रकृति पुरुष का विवेक मोक्ष का कारण है, उस विवेक का साधन योग मुझको प्राप्त हो, इस प्रकार की इच्छा से लोक तथा परलोक के विषय तृष्णा रहित पुरुष की योग में होने वाली रुचि को "श्रद्धा" कहते हैं।

फिर श्रद्धा जो कि माता के समान भलाई करनेवाली है, योगी की रक्षा करती है, उस श्रद्धा से युक्त विवेकार्थी योगी को "वीर्य" यह बल उत्पन्न हो जाता है, जिससे वह अगले उपायों के करने को समर्थ हो जावे, तब वीर्यवान् योगी को स्मृति उपस्थित होती है, स्मृति (स्मरणशक्ति उपस्थित होने पर चित्त शान्त व्याकुलता रहित हो जाता है, चित्त के समाधि = साधन से प्रज्ञा = विवेक (कि मैं क्या हूं जगत् क्या है, ईश्वर क्या है, इत्यादि भेद) खुल जाता है, जिससे वह वस्तु को ठीक २ यथावत् जानने लगता है। इस प्रकार होने से भी वैराग्य हो जाता है और 'असंप्रज्ञात' योग को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार के योगी ३ तीन प्रकार के होते हैं। १ मृदुपाय, २ मध्योपाय, और ३ अधिमात्रोपाय ॥ २० ॥

तीव्र संवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

तीव्र वैराग्य वाले योगियों को शीघ्र समाधि तथा उसके फल कैवल्य का लाभ होता है। "मृदुपायके भी तीन भेद हैं १ मृदुसंवेग, २ मध्यसंवेग, ३ तीव्रसंवेग। अर्थात् जो योगी अभ्यास और वैराग्य तथा श्रद्धा आदि में तीव्रता तेजी और भले प्रकार वेग पूर्वक प्रवृत्त होता है, उसको शीघ्र योग समाधि सिद्ध होता है। ऐसे ही ३ में से प्रत्येक के तीन २ भेद करके सब ९ भेद हो जाते हैं ॥ २१ ॥

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥

(तीव्रसंवेग के भी) १ मृदु, २ मध्य, और ३ अधिमात्र होने से उसे भी विशेष (शीघ्रतर और शीघ्रतम योग प्राप्त होता) है। तीव्र संवेग के भी मृदु, मध्य और अधिमात्र भेद से तीन प्रकार हैं, जिनसे उत्तरोत्तर योग आसन्न = समीप, आसन्नतर =

बहुत समीप और आसन्नतम = बहुत ही समीप हो जाता है ॥ २२ ॥

ईश्वर प्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥

अथवा ईश्वर के भक्ति विशेष से (समाधि अति ही समीप हो जाता है) ॥ २३ ॥

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टःपुरुषविशेष ईश्वरः ॥ २४ ॥

क्लेश कर्म, विपाक (कर्म फल) और आशय (कर्म फल वासनाओं) से रहित जो पुरुष विशेष है, उसको ईश्वर कहते हैं ॥ २४ ॥

तत्र निरतिशयंसर्वज्ञबीजम् ॥ २५ ॥

उस ईश्वर में सबसे अधिक सर्वज्ञता का कारण ज्ञान ही प्रमाण हैं ॥ २५ ॥

सएषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ २६ ॥

वह ईश्वर पूर्वजों का भी गुरु है क्योंकि काल से नहीं कटता ॥ २६ ॥

तस्यवाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

उस ईश्वर का नाम प्रणव 'ओ३म्' है ॥ २७ ॥

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

उस (ओ३म्) का जप और उसके वाच्य ईश्वर के पुनः २ चिन्तन करने को प्रणिधान कहते हैं। इसी को भक्ति विशेष तथा उपासना भी कहते हैं। इस विषय में भाष्यकार इस प्रकार कथन करते हैं कि :—

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् ।
स्वाध्याय योग सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥

अर्थ—स्वाध्याय ओंकार जप के अनन्तर योग अर्थात् समाधि का अभ्यास करे और समाधि के अनन्तर ओंकार का जप करे क्योंकि ओंकार के जप तथा समाधि के अभ्यास से परमात्मा का प्रकाश होता है ॥ २८ ॥

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥२९॥

उस (ईश्वर प्रणिधान) से पुरुषका साक्षात्कार और उसके साधन योग में होनेवाले विघ्नों की निवृत्ति होती है। अर्थात् इस क्रिया से प्रकृति तथा प्राकृत पदार्थों से भिन्न परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार होता है ॥ २९ ॥

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३० ॥

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति, दर्शन, अलब्ध भूमिकत्व, अनवस्थितत्व यह नव चित्त को विक्षप्ति चञ्चल करते हैं, अतएव यह योग में विघ्न हैं। भावार्थ—१ व्याधि ज्वरादिरोग, २ स्त्यान कर्म करने की अशक्ति, ३ संशय साधन में द्विविधा, ४ प्रमाद योगाङ्गों के अनुष्ठान में ढीलापन, ५ आलस्य देह और चित्त का भारीपन, ६ अविरति विषयों में प्रीति, ७ भ्रान्तिदर्शन गुरु उपदेश से ज्ञात हुए योगाङ्गों को योगाङ्ग न समझना, ८ योगाङ्गों का अनुष्ठान करके भी मधुमती आदि योगभूमियों को न प्राप्त होना और ९ अनवस्थितत्व उक्त भूमियों को प्राप्त होने पर चित्त के स्थिर न रहने का नाम है। ये ही ९ योग मल, चित्त विक्षेप और अन्तराय विघ्न भी कहाते हैं ॥ ३० ॥

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासाविक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥

दुःख, दौर्मनस्य, अङ्ग में जयत्व, श्वास, और प्रश्वास ये विक्षेपों के साथ २ होनेवाले पाँच विघ्न हैं अर्थात् आध्यात्मिक, अधिभौतिक और आधिदैविक भेद से तीनों तापों को, जो बुरे लगते हैं और जिनसे सब भागते हैं 'दुःख' कहते हैं। इच्छा पूरी न होने से जो चित्त में क्षोभ होता है उसको दौर्मनस्य कहते हैं। आसन और मन के स्थिर न होने से देह का न साधना (हिलना) अङ्ग में जयत्व है बिना पूरक वा रेचक प्राणायाम के अपने आप बाहर के वायु का नासिका के छिद्रों द्वारा भीतर आना श्वास और फिर बाहर निकलना प्रश्वास कहाता है। विक्षिप्त चित्तवाले को व्याधि आदि ६ योगमलों के साथ ये उनके साथ ५ दोष होते हैं, समाहित चित्तवाले को नहीं होते ॥ ३१ ॥

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

उन (६ विक्षेपों और उनके साथियों) के निवारणार्थ एकतत्व (प्रकरण से ईश्वर स्मरण) का अभ्यास करे। यहां प्रकरण से "एकतत्व" पद का अर्थ ईश्वर है जिसमें "एकोदेवः" श्वे० ६।११ इत्यादि प्रमाण हैं, "अभ्यास" पद का अर्थ प्रणवोपासना है ॥ ३२ ॥

मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्याऽपुण्य विषयाणां भावनाश्चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥

सुखियों में मित्रता, दुःखियों पर दया, पुण्यात्माओं पर हर्ष और पापियों में उपेक्षा की भावना से चित्त निर्मल होता है। (प्रश्न) इसके अतिरिक्त ईश्वर भक्ति में चित्त स्थिर होने का अन्य भी उपाय है ? (उत्तर):—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥

अथवा प्राणवायु के रेचक और धारणा से चित्त स्थिर होता है। अर्थात् चित्त स्थिर करने का दूसरा यह उपाय है कि देर तक बार बार प्राणायाम किया जाय। प्राणायाम एक प्राण का व्यायाम है। जैसे दण्ड बैठक आदि शारीरक व्यायाम (कसरत) करने से शरीर सुडौल नीरोग होता है, वैसे ही भीतर के श्वास को वेग से बाहर फुँकार मारकर निकालने और उसको यथा-शक्ति बाहर रोकने वा शनैः २ भीतर लेकर भीतर रोकने का अभ्यास करने से प्राण वश में हो जाता है, प्राण के वश में होने से भी चित्त वश्य (स्थिर) हो जाता है ॥ ३४ ॥

अब तीसरा उपाय कहते हैं कि:—

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्नामनसःस्थितिनिबन्धनी ॥ ३५ ॥

अथवा गन्धादि विषयों का साक्षात्कार करने वाली मानसवृत्ति उत्पन्न होकर मन की स्थिति को सम्पादन करती है। अर्थात् नासिका के अग्रभाग में धारणा, ध्यान और समाधि करने वाले को उसके जीतने से गन्ध आने लगता है। इसी प्रकार जिह्वा के अग्रभाग में संयम करने से दिव्य रस का स्वादु आने लगता है। तालु में संयम से दिव्य रूप दिखाई देने लगता है। जिह्वा के मध्य में संयम से दिव्य स्पर्श जान पड़ता है। जिह्वा के मूल में संयम से दिव्य शब्द सुन पड़ते हैं। यह पाँचों प्रवृत्तियें अल्पकाल में ही उत्पन्न होकर शास्त्र, अनुमान तथा आचार्य्य से जाने हुये अन्य विषयों में विश्वास उत्पन्न कराती हैं, और प्रकृति पुरुष के विवेक तथा ईश्वर में शीघ्र ही चित्त को

स्थिर करती हैं, अतएव योगी विषयवती प्रवृत्ति से चित्त की स्थिरता को सम्पादन करे ॥ ३५ ॥

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

अथवा शोक रहिता और ज्योतिवाली (उत्पन्न हुई प्रवृत्ति मन की स्थिति को बाँधने वाली है। अर्थात् हृदय कमल में संयम करने से जहाँ रजोगुण, तमोगुण न हों, प्रवृत्ति शोक रहिता हो जाती है, तथा अस्मिता मात्र प्रकाश मय में संयम करने से प्रवृत्ति प्रकाशवती हो जाती है, सो यह शोक रहिता और ज्योति वाली प्रवृत्ति भी मन को स्थिर कर देती है। अब चौथा उपाय कहते हैं ॥ ३६ ॥

वीतराग विषयं वा चित्तम् ॥ ३७ ॥

अथवा राग रहित चित्त (स्थिर हो जाता है) अब पाँचवां उपाय बताते हैं ॥ ३७ ॥

स्वप्न निद्रा ज्ञानाऽलम्बनं वा ॥ ३८ ॥

अथवा स्वप्न ज्ञान का सहारा लेने वाला (चित्त स्थिर हो जाता है)। अर्थात् स्वप्न (नींद) में जैसे बाह्यविषयों का ग्रहण नहीं होता और निद्रा (सुषुप्ति) में जैसे बाह्याभ्यन्तर कोई विषय नहीं रहते, इसी प्रकार स्वप्न और सुषुप्ति के सा चित्त का संयम करने से भी चित्त स्थिर हो जाता है। अब अन्त में छठा उपाय बताकर उपायों की समाप्ति करते हैं ॥ ३८ ॥

यथाभिमत ध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

अथवा जिसको चाहे उसके ध्यान करने से (भी चित्त स्थिर हो जाता है)। अर्थात् मन को सब वस्तुओं में से कोई एक सबसे अधिक अभिमत (पसन्द) होता है, उसी के ध्यान

करने से भी चित्त उसमें लगना सीख जाता है, फिर वशीभूत चित्त को अन्यत्र भी लगा सकते हैं। नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्द्धा, नासिकाग्र, ज्योति चन्द्र, सूर्य्य, अन्यतारा, मणि, मुक्ता आदि किसी चमकीली वस्तु वा अन्य जिस किसी को अभिमत (पसन्द) करे, उसमें चित्त लगाकर स्थिरता सिखावे, फिर वशीभूत चित्त शास्त्रोपदिष्ट पदार्थ में लगना सुगम हो जाता है। अब पक्की रीति पर चित्त स्थिर होने की पहिचान कहते हैं ॥ ३९ ॥

परमाणु परम महत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

परम अणु और परम महत्व तक इस (चित्त) का वशीकार हो जाता है। अर्थात् चाहें तो परम अणु सबसे छोटे पदार्थ में चित्त को लगा दें और चाहें तो बड़े से बड़े में। जब यह अधिकार चित्त पर योगी को हो जावे तब जानो कि चित्त वश्य हो गया। भाव यह है कि दृढ़ स्थिति पर्यन्त ही उपायों की आवश्यकता है पश्चात् नहीं। अब स्थिर हुए चित्त में होने वाली सम्प्रज्ञात समाधि का विषय तथा उसका स्वरूप निरूपण करते हैं ॥ ४० ॥

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येवमणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

स्फटिक मणि के तुल्य राजस तामस वृत्ति रहित शुद्ध सत्त्वमय चित्त का ग्रहीता ग्रहण तथा ग्राह्य में स्थिर होकर इनके समान आकार को धारण करना समापत्ति सम्प्रज्ञात समाधि है। अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, सर्व पदार्थ गोचर ज्ञान के आश्रय परमात्मा का नाम ग्रहिता तथा ज्ञान का नाम ग्रहण और आनन्द तथा अनन्त कल्याण गुणमय परमात्मा का नाम ग्राह्य

है, इनके सम्बन्ध से तदाकारता को प्राप्त हुई योगी के चित्त की वृत्ति का नाम सम्प्रज्ञात समाधि है। अब समापत्ति के चार भेद कहते हुए प्रथम सवितर्का समापत्ति का कथन करते हैं ॥ ४१ ॥

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैःसंकीर्णासवितर्का समापत्तिः ॥ ४२ ॥

उन (चार में सवितर्का समापत्ति वह है जो शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्पों से मिश्रित हो अर्थात् समापत्ति में चित्त तदाकार हो जाता है परन्तु कल्पना करो कि एक पुरुष में गौ में चित्त को लगा कर तदाकार करके समापत्ति की तौ जब तक गौ शब्द और गौ शब्द का अर्थ पशु विशेष और इन (शब्द और अर्थ) को मिला कर जो कुछ समझा जाता है वह ज्ञान; इन शब्द अर्थ और ज्ञानों के विकल्प रहें तब तक उस समापत्ति को सवितर्का कहते हैं क्योंकि उसमें शब्द भी मिश्रित है अर्थ भी और उन दोनों का ज्ञान भी। परन्तु जब शब्द और ज्ञान के विकल्प भी न रहें तब निर्वितर्का समापत्ति होती है, जिसके अगले सूत्र में कहते हैं कि :—

स्मृतिपरिशुद्धौस्वरूपशून्येवाऽर्थमिभासानिर्वितर्का ॥ ४३ ॥

स्मृति के मार्जित (दूर) होने पर अपने स्वरूप से शून्य सा केवल अर्थ (ग्राह्य विषय) मात्र का जिसमें भान हो, वह निर्वितर्का (समापत्ति है)। भाव यह है कि जिस समाधि में शब्द तथा ज्ञान के विकल्प से रहित केवल परमात्मा के स्वरूप में स्थित हुई योगी की चित्तवृत्ति परमात्म स्वरूप ही हो जाती है उसको निर्वितर्क समाधि कहते हैं। १ सवितर्का

२ निर्वितर्का कह चुके, अब ३ सविचारा और ४ निर्विचारा का कथन करते हैं :—

एतयैवसविचारानिर्विचाराचसूक्ष्मविषयाव्याख्याता ॥ ४४ ॥

इस सवितर्क तथा निर्वितर्क समाधि के लक्षण से ही सूक्ष्म विषय में होने वाली सविचार समाधि, तथा निर्विचार समाधि का भी लक्षण जानना चाहिये। अर्थात् स्थूल सूक्ष्म सर्व विषयों से निर्मुक्त ईश्वर के ज्ञान मात्र में स्थिर हुई योगी की चित्तवृत्ति को सविचार तथा निर्विचार समाधि कहते हैं। जिस समाधि में ज्ञान के आश्रय परमात्मा का भान नहीं होता किन्तु ज्ञान मात्र का ही भान होता है उसको सविचार समाधि और जिसमें सम्पूर्ण जगत् की योनि अनन्त कल्याण गुणमय सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का भान होता है उसको निर्विचार समाधि कहते हैं। यहां पर जो सवितर्क, निर्वितर्क सविचार, निर्विचार, इस प्रकार समाधियों का क्रम से वर्णन किया है उसका भाव यह है कि योगी पूर्व २ समाधि को परित्याग करके उत्तरोत्तर समाधि को सम्पादन करके अपने आप को कृतार्थ न मान ले, क्योंकि परमात्मा में समाधि होने से पुरुष कृतार्थ होता है, जैसा कि "यच्छेद्वाङ् मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि। ज्ञानमात्मनि महतिनियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि" ॥ कठ० ३। १३ में कहा है कि बुद्धिमान् योगी इन्द्रियों को विषयों से रोक कर मन में लय करे और मन को बुद्धि में तथा बुद्धि को सर्वज्ञाता परमात्मा में लय करे। अब सब समाधियों को मिलाकर सम्प्रज्ञात समाधि का उपसंहार करते हैं :—

सूक्ष्म विषयत्वं चालिङ्ग पर्यवसानम् ॥ ४५ ॥

और सूक्ष्म विषय में होने वाली समाधि का (अलिङ्ग पर्यवसानम्) ईश्वर पर्य्यन्त (सूक्ष्म विषयत्वं) सूक्ष्म विषय है। तात्पर्य:-सूक्ष्म विषय में होनेवाली सविचार तथा निर्विचार समाधि के विषय की अवधि परमात्मा है। अब सब समाधियों को मिलाकर सम्प्रज्ञात समाधि का उपसंहार करते हैं:—

ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥

पूर्वोक्त चारों समाधियों का ही सम्प्रज्ञात योग कहते हैं। अब उक्त समाधियों में से निर्विचार समाधि की उत्तमता कथन करते हैं ॥ ४६ ॥

निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥

निर्विचार समाधि की निर्मलता से सब पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होता है। "निर्विचार समाधि का नैर्मल्य यह है कि रजोगुण तमोगुणों के मल से रहित प्रकाशरूप बुद्धि सत्व की, प्रकृति (प्रधान) पर्यन्त सूक्ष्म ग्राह्य विषय का जिसमें प्रत्यक्ष हो जाता है और रजोगुण तमोगुणों से तिरोहित (अन्तर्हित) नहीं होती, जो सात्विक होने निगी निर्मल है, ऐसी स्थिरता हो जाना। इस दशा में सात्विक बुद्धि प्रसन्न निर्मल स्वच्छ निर्विकार हो जाती है और बुद्धि को अर्थात्:—

ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥

उस निर्विचार समाधि की निर्मलता होने पर एकाग्र चित्त योगी को जो (प्रज्ञा) ज्ञान की प्राप्ति होती है योगीजन उसका ऋतंभरा प्रज्ञा कहते हैं। ऋतंभर का अर्थ यह है कि ऋतमसत्य" विकल्प रहित यथार्थ पदार्थ को जो बुद्धि विषयता से धारण करती हैं अर्थात् तब निर्भ्रम बुद्धि हो जाती है ॥ ४८ ॥

श्रुतानुमान प्रज्ञाभ्यामन्य विषया विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

(यह ऋतंभरा प्रज्ञा) विशेष विषयिणि होने श्रुत-शास्त्र और अनुमान की प्रज्ञा से भिन्न विषय है। "शास्त्र और अनुमान से भी पदार्थ का ज्ञान होता है परन्तु साक्षात्कार नहीं होता, पर हाँ, इस ऋतंभरा प्रज्ञा से साक्षात्कार होता है, इस लिये शास्त्र अनुमान तो सामान्य ज्ञान करानेवाले हैं और ऋतंभरा प्रज्ञा विशेष ज्ञान कराती है। इसलिये यह श्रुत और अनुमान से अन्य विषया है ॥ ४९ ॥

तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कार प्रतिबन्धी ॥ ५० ॥

इस (ऋतंभरा प्रज्ञा) से उत्पन्न हुआ संस्कार अन्य संस्कारों का हटाने वाला है। "यद्यपि शब्दादि विषय भोग वासना रूप अनादि शत्रु, अयोगियों के संस्कार बड़े प्रबल हैं पर ऋतंभरा प्रज्ञा जब अपना संस्कार उत्पन्न करती है तो अन्य संस्कारों को दूर भगाती है ॥ ५० ॥

तस्यापिनिरोधेसर्वनिरोधान्निर्बीजःसमाधिः ॥५१॥

पर वैराग्य द्वारा प्रज्ञा तथा प्रज्ञा संस्कारों का निरोध हो जाने पर पुरातन नूतन सब संस्कारों के न रहने से निर्बीज समाधि होती है। "यह सब समाधियों से उत्तम समाधि है।" इसी भाव को मुण्डकोपनिषद् में इस प्रकार स्पष्ट किया है कि :—

यदापश्यःपश्यतेरुक्मवर्णंकर्तारमीशं पुरुष ब्रह्मयोनिम् ॥ तदाविद्वान् पुण्यपापेविधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ मु० ३। १। ३

अर्थ—जब विवेकी पुरुष वेद प्रकाशिक, स्वयंप्रकाश, जगत् कर्त्ता परमात्मा को देखता है तब अज्ञान से रहित होकर पुराय पाप की निवृति द्वारा मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

॥ इति प्रथमः समाधि पादः समाप्तः ॥

* ओ३म् *

अथ द्वितीय साधन पादः प्रारभ्यते

प्रथम पाद में योग तथा योग के भेदों का बिस्तार पूर्वक वर्णन किया, अब इस पाद में योग के साधनों का निरूपण करते हुए प्रथम "क्रिया योग" का उपदेश करते हैं:—

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः ॥ १ ॥

तपः स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, इन तीनों को क्रिया योग कहते हैं। "सुख दुःख, शीत उष्णादि द्वन्दों का सहने और हित कर तथा परिमित आहार करने का नाम तप है। प्रणव ओ३म् का जप और वेद, उपनिषदादि शास्त्रों के अध्ययनका नाम स्वाध्याय है। फल की इच्छा छोड़ कर केवल ईश्वर की प्रसन्नता के लिये वेदोक्त कर्मों के करने का नाम 'ईश्वर प्रणिधान' है। इन तीनों का नाम योग शास्त्र में "क्रिया-योग" है, क्योंकि यह तीनों स्वयं क्रिया रूप तथा योग के साधन हैं; इनके करने से अस्थिर चित्त वाला भी योग को प्राप्त हो जाता है। अब उक्त क्रिया योग का फल कथन करते हैं:—

समाधिभावनार्थःक्लेशतनू करणार्थश्च ॥ २ ॥

(यह क्रियायोग) समाधि को सिद्ध करता और अविद्यादि क्लेशों को शिथिल करता है। अब क्लेशों की गणना करते हैं:—

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाऽभिनिवेशाःपञ्चक्लेशाः॥३॥

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं। अब उक्त क्लेशों का मूल कारण कहते हैं:—

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषांप्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

अस्मितादि चारों क्लेशों का अविद्या मूल कारण है, और यह चारों प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार भेद से चार प्रकार के हैं। जैसे "खेत में अन्न उपजते हैं, वैसे अविद्या में अस्मिता आदि उपजते हैं, खेत न हो तो जैसे अन्न उत्पन्न नहीं हो सकते, वैसे ही अविद्या न हो तो अस्मितादि क्लेश भी उत्पन्न नहीं हो सकते। बीज रूप से चित्त में रहनेवाले तथा सहकारी कारण के बिना अपने कार्य की उत्पत्ति में असमर्थ क्लेशों का नाम "प्रसुप्त" है और क्रियायोग द्वारा निर्बल हुए क्लेशों का नाम "तनु" है, सजातीय वा विजातीय क्लेश के वर्त्तमान क्लेश के वर्त्तमान काल में न होनेवाले अर्थात् कभी २ अवसर पाकर प्रकट होने वाले क्लेशों का नाम "विच्छिन्न" है और विषयों के सम्बन्ध से प्रकट होकर सुख दुःख आदि कार्य्य को उत्पन्न करनेवाले क्लेशों का नाम "उदार" है। इनमें:—

प्रसुप्तास्तत्वलीनानां तन्ववस्थाश्चयोगिनाम्।
विच्छिन्नोदार रूपाश्च क्लेशाविषयसङ्गिनाम् ॥

अर्थ—विदेह और प्रकृतिलय पुरुषों के "प्रसुप्त" योगियों के "तनु" और विषय रत पुरुषों के विच्छिन्न तथा "उदार" होते हैं। अब अविद्या का लक्षण करते हैं:— ॥ ४ ॥

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥

अनित्य में, नित्यता, अशुचि में शुचिता, दुःख में सुख और अनात्मा में आत्मापना समझना अविद्या है। उलटे ज्ञान अर्थात् अन्य में अन्य बुद्धि को अविद्या कहते हैं; जिसके ४ भाग हैं। १—अनित्य जगत् आदि को नित्य जानना; २—मलमुत्रादि के भण्डार देहादि को शुचि मानना; ३—विषय भोगादि परिणाम दुःखों को सुख समझ कर उनमें फँसना, और ४—अनात्मा बुद्धि आदि वा स्त्री पुत्रादि को आत्मा समझना। इस प्रकार पाप को पुण्य, अनर्थ को अर्थ इत्यादि जानना भी अविद्याही है। अब दूसरे क्लेश "अस्मिता" का लक्षण कहते हैं।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥

द्रष्टा और दर्शन की शक्ति को एकसा मानना "अस्मिता" है देखनेवाला आत्मा और देखने का साधन बुद्धि वा अन्तःकरण मात्र का एक मान लेना अस्मिता है। अविद्या और अस्मिता में भेद इतना ही है कि केवल आत्मा को अनात्मा वा अनात्मा को आत्मा मानना अविद्या और सुख दुःखादि विशिष्ट अन्तःकरणादि को यह मानना कि अहं सुखी—मैं सुखी हूँ, अहं दुःखी = मैं दुःखी हूँ इत्यादि अस्मिता है। अब राग का लक्षण करते हैं।

सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥

सुख भोग के अनन्तर चित्त में उत्पन्न हुई इच्छा विशेष का नाम राग है अब द्वेष का लक्षण करते हैं—

दुःखानुशयीद्वेषः ॥ ८ ॥

दुःख अनुभव के अनन्तर उत्पन्न क्रोध रूप चित्त वृत्ति का नाम द्वेष है। अब अभिनिवेश का लक्षण कहते हैं:—

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ॥९॥

विवेकी पुरुष को भी मूर्ख के समान वासना के बल से होने वाले मरण भय को अभिनिवेश कहते हैं। "अब न मरूँ" यह चित्त वृत्ति विशेष अभिनिवेश कहाता है। उक्त पाँच क्लेशों का नाम अन्य शास्त्रों में तम, मोह महामोह, तामिस्त्र, अन्धतामिस्त्र है; जैसा कि निम्नलिखित श्लोक में वर्णन किया है कि:—

तमोमोहोमहामोहस्तामिस्त्रोह्यन्धसंज्ञकः।
अविद्यापञ्चपर्वैषासांख्ययोगेषुकीर्तिता ॥

सांख्य और योग शास्त्र में अविद्या का नाम "तम" अस्मिता का "मोह" राग का "महामोह" द्वेष का "तामिस्त्र" और अभिनिवेश को "अन्धतामिश्र" है। अब क्लेश के त्याग का उपाय कहते हैं ॥ ९ ॥

तेप्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥

उक्त क्लेश किया योग द्वारा निर्बल होकर चित्त के निवृत्त होने पर स्वयं निवृत्त हो जाते हैं। अर्थात् प्रथम उन क्लेशों को क्रिया योग से सूक्ष्म (हलका) करना चाहिये और फिर जहाँ से क्लेश उत्पन्न होता हो उसको वहाँ का वहीं रोक देना, इस प्रकार सूक्ष्म क्लेशों का बचाव हो सकता है। और—

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

उन (क्लेशों) की वृत्तियें ध्यान से हटानी चाहिये। अब यह कहते हैं कि इन क्लेशों को क्यों हटाना चाहिये।

क्लेशमूलकर्माशयोदृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥ १२॥

इस जन्म तथा जन्मान्तर में फल देने वाले शुभाशुभ कर्म जन्य धर्मा धर्म का अविद्यादि क्लेश मूल कारण है। 'इसलिए मुमुक्षु वा योगी को हटाना है।' क्योंकि:—

सतिमूलेतद्विपाकोजात्यायुर्भोगाः ॥ १३ ॥

मूल के होते हुए उनका फल १ जाति, २ आयु, और ३ भोग होते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जाति, नियत काल तक जीवन, और सुख दुःखादि भोग रूप कर्म विपाक तबही तक है जब तक उनके मूल क्लेश हैं, जब अविद्या क्लेश जो मूल हैं, न रहें, तो "छिन्नेमूले नैव पत्रं न शाखाः" जड़ कट जाने पर न पत्र रहें न टहनी। इस कहावत के अनुसार न जाति रहे, न आयु रहे और न भोग रहें। अब यह कहते हैं कि जाति, आयु और भोग में क्या बुराई है? जिससे बुरे बताये जाते हैं:—

तेह्लादपरितापफलाः पुण्याऽपुण्य हेतुत्वात् ॥१४॥

वे (जाति, आयु और भोग) पुण्य और पाप हेतु होने से हर्ष शोक रूप फल वाले हैं। यदि कोई कहे कि जिनसे दुःख की प्राप्ति होती है वही त्याज्य हो सकते हैं अन्य नहीं? उत्तर:—

परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ १५ ॥

विवेकी को तो परिणाम दुःख, ताप दुःख और संस्कार दुःख से तथा गुण वृत्तियों के (परस्पर) विरोध से सब दुःख ही है।" मन, वाणी तथा शरीर के मानसिक, वाचिक और शारीरिक शुभाशुभ कर्मों को करता है, उनमें जन्म और जन्म से जो इसको दुःख प्राप्त होता है उसका नाम "परिणाम दुःख" है

क्योंकि विषय सुख ही राग द्वेषादिकों की उत्पत्ति द्वारा भावी जन्म में दुःख रूप से परिणत हुआ है। विषय सुख की प्राप्ति समय में जो पुरुष को सुख साधनों की अपूर्णता देखकर हृदय में सन्ताप उत्पन्न होता है उसका नाम "ताप" दुःख है। विषय सुख के अनुभव से संस्कार, संस्कारों से सुख स्मरण, सुख स्मरण से राग, तथा राग से सुख प्राप्ति के लिए शुभाशुभ कर्मों में प्रवृत्ति, प्रवृत्ति से पुण्य पाप और पुण्य पाप से पुनः जन्म द्वारा सुखानुभव और फिर पुनः संस्कार, इस प्रकार होने वाले जन्म मरण के हेतु संस्कार चक्र का नाम "संस्कार दुःख" है। इसलिए क्लेश मूलक कर्माशय को त्यागना इष्ट है। अब जब सब दुःख ही दुःख है, तो उस दुःख की तीन अवस्था हो सकती हैं। १ भूत दुःख, २ वर्तमान दुःख और ३ भावी दुःख। जो दुःख हो चुका उसकी चिन्ता व्यर्थ है; जो वर्तमान है, वह अगले क्षण में न रहेगा, भूत हो जायगा, उसका विचार भी व्यर्थ है, परन्तु जो दुःख होनेवाला है उसी को रोकना चाहिये। इसलिये आचार्य्य अगला सूत्र बताते हैं कि:—

हेयं दुःखमनागतम् ॥ १६ ॥

जो दुःख अनागत (अभी नहीं आया, पर आने वाला) है, वह हटाना चाहिये।

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

द्रष्टा और दृश्य का संयोग=हेय का हेतु है। "द्रष्टा जीवात्मा और दृश्य प्रकृति जन्य देहादि कार्य, इनका संयोग ही हेय संसार दुःख का हेतु है। अब दृश्य=प्राकृत पदार्थ का स्वरूप वर्णन करते हैं कि:—

प्रकाशक्रियास्थितिशीलंभूतेन्द्रियात्मकं भोगाऽपवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥

पुरुष को भोग तथा अपवर्ग देनेवाले भूत तथा इन्द्रिय रूप से पणिाम को प्राप्त प्रकाश, क्रिया तथा स्थिति स्वभाव वाले सत्त्वादि गुणों को दृश्य कहते हैं। अर्थात् पृथिवी, जल तेज, वायु, आकाश यह पाँच स्थूल और गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द यह पांच सूक्ष्म इन दशों का नाम "भूत" और वाक्, पाणि (हाथ) पाद, गुदा, उपस्थ, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, मन, अहंकार, बुद्धि इन तेरह का नाम "इन्द्रिय" है। प्रकाश स्वभाव का नाम सत्त्वगुण, क्रिया स्वभाव का नाम रजोगुण और स्थिति स्वभाव का नाम तमोगुण है अर्थात् प्रकाश शक्ति का नाम "सत्व" और क्रिया शक्ति का "रज" तथा प्रकाश क्रिया के प्रति बन्धक आवरण शक्ति का नाम "तमोगुण" है। सुख दुख के साधन विषयों की प्राप्ति का नाम "अपवर्ग" है। ईश्वर की आज्ञा नुसार पुरुष को भोग तथा अपवर्ग देने के लिये भूत और इन्द्रिय रूप से परिणत सत्त्वादि गुणरूप प्रकृति का नाम "दृश्य" है। अब उक्त दृश्य की अवस्था विशेष का निरूपण करते हैं:—

विशेषाऽविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानिगुणपर्वाणि ॥१९॥

विशेषों अविषों, लिङ्ग मात्रों और अलिङ्गों को गुणों के पूर्ष (अवस्था भेद) कहते हैं। आकाशादि पाँच ५ स्थूल भूत, श्रोत्रादि ५ ज्ञानेन्द्रिय, वाणी आदि ५ कर्मेन्द्रियें और १ मन; ये १६ षोडशविकार विशेष कहाते हैं। आकाशादि के कारण सूक्ष्म भूत (तन्मात्रा) अपने २ से पहले २ के लक्षण मिल कर १।२।३।४ और ५ पांच लक्षणों वाले शब्द, स्पर्श रूप,

रस और गन्ध ये पांच और छठा अहङ्कार; ये छः ६ अविशेष कहाते हैं, ५ तन्मात्राओं और अहङ्कार के कारण महत्तत्व को लिङ्ग मात्र कहते हैं और महत्तत्त्व के कारण भूत=प्रधान प्रकृति को अलिङ्ग कहते हैं, ये चारों गुण पर्व कहाते हैं। इनमें से सत्वादि ३ गुणों की साम्याऽवस्थाको अलिङ्ग और विषमाऽवस्था को विशेष अविशेष और लिङ्ग मात्र जानिये। यह सांख्य और योग का प्रक्रिया भेद मात्र है कि संख्या तो ५ तन्मात्रों को अहङ्कार का कार्य्य लिखता है और योग इन ५ को अहङ्कार का भाई और महत्तत्त्व की सन्तान (कार्य) बताता है। अवस्था भेद के वर्णन पूर्वक दृश्य का स्वरूप बताकर अगले सूत्र में द्रष्टा का स्वरूप बताते हैं कि:—

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपिप्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥

द्रष्टा ज्ञान स्वरूप है और शुद्ध भी (बुद्धि कृत) प्रत्ययों के अनुसार देखने (जानने) वाला है। तात्पर्य्य यह है कि जो प्रमाणादि बुद्धि वृत्तियों द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों का प्रमाता तथा कूटस्थ नित्य चेतन स्वरूप पुरुष है वह "द्रष्टा" है। अब द्रष्टा और दृश्य का वर्णन करके इनका परस्पर सम्बन्ध बताते है कि:—

तदर्थएवदृश्यस्यात्मा ॥ २१ ॥

दृश्य का आत्मा (स्वरुप) केवल द्रष्टा के ही लिये है। प्रकृति जन्य कार्य अपने लिये नहीं किन्तु द्रष्टा पुरुष के लिये ही भोग तथा मोक्षार्थ है, यही इनका सम्बन्ध है। यदि कहो कि कृतार्थ (कामयाब) के लिये तो दृश्य (प्रकृति) नष्ट (व्यर्थ) है क्योंकि उसने विवेक से उसे आत्मा से पृथक् जान त्याग दिया, तो उत्तर यह है कि:—

कृतार्थंप्रतिनष्टमप्यनष्टंतदन्यसाधारणत्वात्॥२२॥

जिस पुरुष का प्रयोजन सिद्ध हो गया है उसके प्रति नाश को प्राप्त होने पर भी, प्रकृति स्वरूप से नाश नहीं होती; क्योंकि वह सबके लिये है। "नष्ट का अर्थ व्यर्थ इसलिये किया गया है कि वास्तविक नाश वा अभाव असम्भव है क्योंकि प्रकृति कालापेक्ष अनादि अनन्त तीन पदार्थों (जीव ब्रह्म, प्रकृति) में से एक है। द्रष्टा और दृश्य का स्वरूप बताकर अब संयोग का वर्णन करते हैं:—

स्वस्वामीशक्त्योःस्वरूपोलब्धिहेतुःसंयोगः ॥२३॥

स्व (मिल्कियत) और स्वामी (मालिक) की शक्तियों के स्वरूप की उपलब्धि का हेतु सम्बन्ध है। यहां स्व शब्द से प्रकृति और स्वामी शब्द से पुरुष का ग्रहण है। स्व और स्वामी अर्थात् प्रकृति और पुरुष की शक्तियें संयोग से उपलब्ध होती हैं यदि इन प्रकृति और पुरुष का संयोग न हो तो दोनों की शक्तियें उपलब्ध नहीं हो सकतीं। अब उक्त संयोग के हेतु कथन करते हैं:—

तस्यहेतुरविद्या ॥ २४ ॥

प्रकृति पुरुष के संयोग का कारण अविवेक है। "अविद्या" अज्ञान, मिथ्या ज्ञान, भ्रान्ति ज्ञान, अविवेक, उलटा ज्ञान इत्यादि पर्यायवाच्य अविद्या से द्रष्टा दृश्य में फँसा पड़ा है। बस अब मूल कारण बन्ध का ज्ञान पड़ा इसलिये अविद्या ही हटाने योग्य है। इसलिये अगले सूत्र में हान का वर्णन करते हैं और बताते हैं कि अविद्या न रहने से कैसे कैवल्य मोक्ष हो सकता है यथा:—

तदऽभावात्संयोगाऽभावोहानंतद्दृशेःकैवल्यम्॥२५॥

उक्त अविद्या के निवृत्त होने पर द्रष्टा दृश्य के संयोग की निवृत्ति का नाम हान है, और यह हान ही पुरुष की मोक्ष है। यह नियम है कि "निमित्तापाये नौमित्तकस्याप्यपायः" निमित्त की निवृत्ति होने से नैमित्तक की भी निवृत्ति हो जाती है। संसार रूप दुःख के हेतु द्रष्टा दृश्य संयोग का निमित्त अविद्या है, विवेक ज्ञान द्वारा अविद्या की निवृत्ति होने से जो प्रकृति पुरुष के संयोग की निवृत्ति है उसी का "हान" है। इस हान की प्राप्ति होने पर प्रकृति के सम्बन्ध से होने वाले सम्पूर्ण दुःखों की निवृत्ति हो जाती है। अतएव दुःख का हेतु प्रकृति संयोग ही पुरुष की बन्ध और उसकी निवृत्ति ही मोक्ष है तात्पर्य यह है कि पुरुष में बन्ध, मोक्ष औपाधिक है स्वाभाविक नहीं अब उक्त अविद्या के हान हटाने का उपाय क्या है उसे कहते हैं :—

विवेकख्यातिरविप्लवाहानोपायः ॥ २६ ॥

विप्लव रहित विवेक ज्ञानही हान का उपाय है। वासना सहित मिथ्या ज्ञान का नाम "विप्लव" है। विप्लव, उपद्रव, मलिनता यह सब पर्य्याय शब्द हैं, जो विवेकख्याति मिथ्या ज्ञान तथा मिथ्या ज्ञान की वासना के सहित उदय होती है वह विप्लव वाली है और क्रिया योग के अनुष्ठान द्वारा वासना सहित मिथ्या ज्ञान के सूक्ष्म हो जाने पर दीर्घ काल नैरन्तर्य्य सत्कार पूर्वक समाधि के अभ्यास से जो प्रज्ञा उत्पन्न होती है जिसका दूसरा नाम ऋतम्भरा है उसको अविप्लव विवेक-ख्याति कहते हैं, क्योंकि उस काल में क्रिया योग के प्रभाव से कार्य्य सम्पादन में असमर्थ हुआ मिथ्या ज्ञान उसको मलिन नहीं कर सकता, इस प्रकार वासना सहित मिथ्या ज्ञान रूप

उपद्रव से रहित हुई निर्मल विवेक ख्याति ही हान का उपाय है। उस विवेकख्यातिमान् योगी को फिर क्या फल होता है सो कहते हैं। ॥२६॥

तस्यसप्तधाप्रान्तभुमिप्रज्ञाः ॥२७॥

उस (विवेकी) को सात प्रकार की प्रान्त भूमि प्रज्ञा हो जाती है। अर्थात् निर्मल विवेकख्याति के उत्पन्न होने से जो योगी के चित्त में प्रज्ञा उत्पन्न होती है वह विषय भेद से सात प्रकार की है, १—जिज्ञासा का अन्त। सब कुछ जो त्याज्य था, जान लिया अब जानने की इच्छा नहीं। २-जिहासा का अन्त। त्याज्य के हेतु अविद्यादि पांचों क्लेश निवृत्त हो गये अब मुझको इनमें से कोई भी निवर्त्तनीय नहीं। ३—प्रेप्सा का अन्त। हान को पालिया, अब कुछ पावना शेष न रहने से प्रेप्सा = प्राप्त करने की इच्छा की भी पूर्ति हुई। ४-चिकीर्षा का अन्त। हान का उपाय विवेक कर चुके, अब कुछ करना शेष नहीं अतः चिकीर्षा भी पूरी हुई। ये ४ तो प्रज्ञा की विमुक्ति (छुटकारा) हुई, अब शेष ३ रहीं सो चित्त की विमुक्ति हैं। उनमें पहली १-मेरा बुद्धि सत्व कृतार्थ हो गया। अब इसका अन्त आ गया। २-बुद्धिरूप से परिणत (रूप बदले हुवे) गुण भी अपने कारण (प्रकृति) में लय को प्राप्त हो गये, जैसे पहाड़ पर से लुढ़के हुवे पत्थर कहीं ठिकाना न पाते हुवे टूटते २ रेत बन जाते हैं। इसी प्रकार सत्वादि तीनों गुण भी बुद्धि सत्व सहित लय को प्राप्त हो जाते हैं। ३-अब तो गुणों से अतीत, स्वरूप मात्र से अवस्थित, चेतन मात्र, एक रस, केवली पुरुष (जीवात्मा) परमात्मा से साक्षात् करेगा, अब क्या शेष है कुछ नहीं। इस प्रकार चित्त की विमुक्ति हो जाती है। यूं पुर्वोक्त ४ और ये अन्त में कहीं तीन मिलकर सात प्रान्त भूमि हुई। अब साधनों का वर्णन इसलिये आरम्भ

करते हैं कि साध्य की सिद्धि साधना वा साधनों के विना नहीं होती। तथाहि:—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥ २८ ॥

योगाङ्गों के अनुष्ठान द्वारा अशुद्धि के नाश हो जाने से विवेकख्याति पर्यन्त निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है। अर्थात् जैसे २ साधनों का अनुष्ठान (अमल) करते जाओगे वैसे २ अशुद्धि घटती जायगी, जैसे २ अशुद्धि घटती जायगी, वैसे २ सम्यक् ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जायगा, यह ज्ञान प्रकाश की वृद्धि विवेकख्याति होने तक बराबर बढ़ती जायगी। इसलिये अङ्गों से ही योगानुष्ठान ठीक होगा। अब अङ्गों की गणना करते हैं कि:—

यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥

यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि यह आठ योग के अङ्ग हैं। यद्यपि प्रथम पाद में बताये हुवे अभ्यास, वैराग्य, श्रद्धा, वीर्यादि भी योग के ही अङ्ग वा साधन थे पर यहाँ जो ८ अंग गिनाये हैं उनमें पूर्वोक्त अभ्यासादि भी अन्तर्गत जानिये। जैसे कि समाधि में अभ्यास, सन्तोष में वैराग्य, तप आदि में श्रद्धादि, धारणादि में मैत्री करुणादि का यथा योग्य अन्तर्भाव समझना चाहिये। अब इन ८ में से एक २ वर्णन में प्रथम यम कितने और कौन २ हैं सो बताते हैं ॥ २९ ॥

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ ३० ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यह पांच यम

हैं। १-मन वचन-कर्म से सदा सब प्राणियों को पीड़ा न देना = अहिंसा, २-जैसा कुछ देखा, सुना और मनमें हो वही कहना = सत्य, ३ सब प्रकार से पराये द्रव्य में लालच न करना = अस्तेय, ४ उपस्थेन्द्रिय का संयम और वीर्य रक्षा = ब्रह्मचर्य, और धनादि के संग्रह में कमाने, रखने, खोये जाने, पर पीड़ा इत्यादि दोष-देखकर सदा शरीर यात्रा निर्वाह से अतिरिक्त भोग साधनों को स्वीकार न करना = अपरिग्रह कहाता है। यम का अर्थ यह है कि "विषयों से उपरत किये जावें, मन सहित सब इन्द्रियें जिनसे वे यम ५ कहाते हैं। उन यमों की विशेषता यह है कि :- ॥ ३० ॥

जातिदेशकालसमयाऽनवच्छिन्नाःसार्वभौमामहाव्रतम् ॥ ३१ ॥

(वे यम यदि) जाति, देश, काल और समय से न कटें और सब भूमियों में रहें (तो) महाव्रत हैं। अहिंसादि यम जात्यादि में संकुचित न होकर सर्वत्र रहें तो महाव्रत हैं। जैसे एक अहिंसा तो जाति से संकुचित है कि गौ वा ब्राह्मण को नहीं मारूँगा, पर जाति से अनवच्छिन्न अहिंसा यह है कि किसी को भी न मारूँगा ऐसेही देश से संकुचित अहिंसा यह है कि कुरुक्षेत्रादि तीर्थस्थलों में न मारूँगा, पर देशाऽनवच्छिन्न अहिंसा यह है कि कहीं भी न मारूँगा। तथा एकतो कालाऽव-च्छिन्न अहिंसा है कि अमावास्या पौर्णिमा आदि पर्वों में न मारूँगा, पर कालाऽनवच्छिन्न अहिंसा वह है कि कभी भी न मारूँगा। इसी प्रकार एकतो समयाऽवच्छिन्न अहिंसा है कि नियम वा प्रतिज्ञा के विरुद्ध न मारूँगा। जैसे कोई प्रतिज्ञा करले कि किसी के कहे बिना अपने आप न मारूँगा, पर समयाऽन-वच्छिन्न अहिंसा यह है कि किसी प्रकार नियम अनियम आदि

आदि किसी भी प्रकार न मारूंगा। सो ऐसी अहिंसा जो सब जातियों, सब देशों, सब कालों और सब नियमाऽनियमादि में टूटने ही न पावे, सार्वभौम महाव्रत हुई। वैसे ही सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह में भी जानना चाहिये। जो यम उक्त जाति आदि के द्वारा संकुचित नहीं और जाति, देश, काल तथा समय रूप भूमियों में निरन्तर अनुष्ठान किये जाते हैं अर्थात् उक्त भूमियों में जिनके अनुष्ठान का कदापि व्यभिचार नहीं होता उनको 'महाव्रत' कहते हैं, यही महाव्रत योगियों को योग सिद्धि के लिये अनुष्ठेय है।

अब दूसरे योगाङ्ग नियमों का वर्णन करते हैं:—

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानिनियमाः ॥३२॥

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह नियम हैं १-"शौच" बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है। जल अथवा मिट्टी आदि से शरीर के और हित, मित तथा मेध्य=पवित्र भोजनादि से उदर के प्रक्षालन का नाम "बाह्य-शौच" और मैत्री, करुणा, मुदिता आदि भावनाओं से ईर्षा आदि चित्तमलों के जैसा पूर्व कह आये हैं प्रक्षालन का नाम "आभ्यन्तर शौच" है। २-"सन्तोष" जो भोग के उपयोगी साधन विद्यमान हैं उनसे अधिक अनुपयोगी साधनों की इच्छा के अभाव का नाम सन्तोष है। ३ "तप"—सुख, दुख, शीत, उष्णादि द्वन्दों को सहारने और हितकर तथा परिमित आहार करने का नाम तप है। ओंकारादि ईश्वर के पवित्र नामों का जप और वेद, उपनिषद् आदि शास्त्रों के अध्ययन का नाम स्वाध्याय है "ईश्वर प्रणिधान" फल की इच्छा छोड़कर केवल ईश्वर की प्रस-

नता के लिये वेदोक्त कर्मों के करने का नाम ईश्वर प्रणिधान है। ये ५ नियम कहाते हैं। नियम का अर्थ यह है कि जो अवश्य कर्त्तव्यताविधान किये जावें। अब उक्त यम नियमों के अनुष्ठान काल में प्राप्त होने वाले विघ्नों की निवृत्ति का उपाय कथन करते हैं:—

वितर्कबाधनेप्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

वितर्कों के द्वारा उक्त यम नियमों के अनुष्ठान में बाधा प्राप्त होने पर प्रतिपक्ष का चिन्ता करे। हिंसा, मिथ्या भाषण, स्तेय (चोरी) आदि का नाम "वितर्क" और इनके द्वारा यम नियमों के अनुष्ठान में प्रतिबन्ध का नाम "बाधन" और हिंसादि से होने वाले दुःखादिरूप भावी फल के चिन्तन का नाम "प्रतिपक्ष भावन" है अर्थात् किसी समय यम नियमों के साधन में बाधा पड़े वो प्रतिपक्ष चिन्तन करना जैसे त्याग किये हुये का ग्रहण करना यह कुत्ते का ही स्वभाव है मनुष्य का नहीं, अतएव मुझको दुःखमय संसाराग्नि के सन्ताप से बचने के लिये हिंसा आदि वितर्कों का कदापि ग्रहण न करना चाहिये। ऐसा करने से योगी के चित्त में हिंसा आदि वितर्क कदापि उत्पन्न नहीं होते और निर्विघ्नता से अनुष्ठित हुए यम नियम शीघ्र ही योग को सिद्ध करते हैं। अब वितर्कों के स्वरूप प्रकार, कारण, धर्म तथा फल का निरूपण करते हुये प्रतिपक्ष भावना का स्वरूप कथन करते हैं:—

वितर्काहिंसादयःकृतकारितानुमोदितालोभक्रोधमोहपूर्वकामृदुमध्याधिमात्रादुःखाज्ञानानन्तफलाइति प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३४ ॥

लोभ, क्रोध तथा मोह से होने वाले कृत कारित तथा

अनुमोदित भेद से तीन प्रकार के मृदु, मध्य, अधिमात्र धर्म वाले हिंसा, मिथ्या भाषण, स्तेय, आदि का नाम वितर्क और यह सब असीम दुःख तथा अज्ञान के देने वाले हैं इस विचार का नाम प्रतिपक्ष भावन है। हिंसा, मिथ्या भाषण, स्तेय, चोरी, आदि का नाम "वितर्क" है और यह हिंसा आदिकृत, कारित तथा अनुमोदित भेद से तीन प्रकार के हैं। जो स्वयं किये जायँ वह "कृत" जो अन्य से किये जायँ वह "कारित" और जो साधु २ ठीक २, इसकी अनुमति से किये जायँ उनको "अनुमोदित" कहते हैं। यह तीनों प्रकार के हिंसादि कर्म लोभ, मोह तथा क्रोध से उत्पन्न होते हैं। मांस चर्मादि की तृष्णा का नाम "लोभ" इसने मेरा अपकार किया मैं भी इसका अपकार करूँ, इस प्रकार अपकार करने की इच्छा से उत्पन्न हुई कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेक को नाश करने वाली द्वेषात्मक तामस चित्तवृत्ति का नाम "क्रोध" और यज्ञादि में पशु आदि के मारने से धर्म होता है ऐसा मिथ्या ज्ञान का नाम "मोह" है। यह लोभ मोहादिक तीनों कारण भी मृदु, मध्य, अधिमात्र इस भेद से एक २ तीन प्रकार का है और मृदु, मध्यादि भेद भी मृदु, मध्य, अधिमात्र इस भेद से एक २ तीन २ प्रकार है, यह सब मिलकर २७ होते हैं, इस प्रकार लोभ आदि कारणों के २७ भेद होने से हिंसादि वितर्कों के ८१ भेद हैं। जो पुरुष इनको करता है, वह अनन्त काल तक दुःखमय संसार तथा अन्धतम को प्राप्त होता है और किसी प्रकार दुःखों से नहीं छूट सकता। अब अनुष्ठान द्वारा प्राप्त हुई यमनियमों की सिद्धि का चिन्ह निरूपण करते हैं:—

अहिंसाप्रतिष्ठायांतत्सन्निधौवैरत्यागः॥ ३५॥

अहिंसा के सिद्ध होने पर उस योगी के समीपवर्त्ती विरोधी

जीवों का भी विरोध निवृत्त हो जाता है। अर्थात् जिस योगी का महाव्रत रूप अहिंसा यम सिद्ध हो गया है उसके समीप रहनेवाले विरोधी जीव भी विरोध का परित्याग कर देते हैं। इस प्रकार के विरोधशील जीव भी परस्पर विरोध न करें और मित्र भाव को प्राप्त हो जावें तब अहिंसा को सिद्ध हुआ जानना चाहिये; यह उसके सिद्धि का चिन्ह है। अब सत्य की सिद्धि का चिन्ह कथन करते हैं:—

सत्यप्रतिष्ठायांक्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

सत्य के सिद्ध होने पर योगी की वाणी क्रिया तथा फल का आश्रय हो जाती है। यदि वह अधार्मिक पुरुष को भी अपनी वाणी से धार्मिकोभव=तू धार्मिक होजा, ऐसा कहदे तो वह धार्मिक हो जाता है और दुःखी को सुखी भव=सुखी हो जा, इस प्रकार कहदे तो वह उसके कथनानुसार आचरण करने से सुखी हो जाता है, इसको क्रिया का फल तथा फल का आश्रय होना कहते हैं। ऐसा हो जाने पर जानो कि सत्य सिद्ध हुआ, यह सत्य सिद्धि का चिन्ह है। अब अस्तेय सिद्धि का चिन्ह कथन करते हैं:—

अस्तेयप्रतिष्ठायांसर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥

अस्तेय के सिद्ध हो जाने पर चारों दिशाओं में होने वाले रत्नादि सम्पूर्ण पदार्थ स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं। भाव यह है कि अस्तेय (चोरी त्याग) की प्रतिष्ठा से योगी विश्वासाई हो जाता है। जब इस प्रकार सिद्धास्तेय योगी के पास देश देशान्तरों से रत्नादि सम्पूर्ण पदार्थ सङ्कल्प मात्र से उपस्थित हो जायँ तब जानना चाहिये कि अस्तेय प्रतिष्ठा अर्थात् सिद्ध हो गया,

यह उसकी सिद्धि का चिन्ह है। अब ब्रह्मचर्य की सिद्धि का चिन्ह कथन करते हैं:—

ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायांवीर्यलाभः ॥ ३८ ॥

ब्रह्मचर्य्य सिद्ध होने पर बल की प्राप्ति होती है। आत्मिक तथा शारीरिक भेद से बल दो प्रकार का है, ब्रह्मचर्य्य की सिद्धि वाले योगी को दोनों प्रकार का बल प्राप्त होता है। "ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" अथ० ११।३।१६ ब्रह्मचर्य्य के प्रभाव से ही विद्वान् मृत्यु को जय करते अर्थात् दीर्घायु होते हैं। उक्त प्रकार की सामर्थ्य प्राप्त होना ही उसकी सिद्धि का चिन्ह है। अब अपरिग्रह की सिद्धि का चिन्ह कथन करते हैं:—

अपरिग्रहस्थैर्येजन्मकथंतासंबोधः ॥ ३९ ॥

अपरिग्रह सिद्ध होने पर जन्म के कथंभाव का ज्ञान होता है। मनुष्य जन्म किस प्रकार सफल हो सकता है और इसलिये किस प्रकार के योगक्षेम की आवश्यकता है, वा थी, वा होगी, इस प्रकार के ज्ञान का नाम "जन्मकथंतासंबोध" है, जिस योगी का अपरिग्रह सिद्ध हो जाता है उसको जन्मकथंतासंबोध की प्राप्ति होती है यही अपरिग्रह का चिन्ह है। अब बाह्य शौच की शुद्धि का चिन्ह कथन करते हैं:—

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सापरैरसंसर्गः ॥ ४० ॥

बाह्यशौच की सिद्धि होने पर अपने शरीर में ग्लानि तथा दूसरों के साथ असम्बन्ध होता है। व्यास भाष्य में कहा है कि:—

स्थानाद्बीजादुपष्टम्भान्निःस्पन्दान्निधनादपि। का-
यमाधेयशौचत्वात्पण्डिताह्यशुचिंविदुः॥ व्या० भा० २।५

अर्थ—रक्त वीर्य से बनने, गर्भाशय में रहने, रुधिर तथा

अस्थिमय होने, नासिकादि सर्व छिद्रों द्वारा मल के बहने, मृत्यु द्वारा अस्पृश्य और कल्पित शौच का आश्रय होने से इस शरीर को पण्डित लोग अशुचि कहते हैं। इस प्रकार अशुचि बुद्धि के उत्पन्न होने से शरीर में ग्लानि और ग्लानी से देहाध्यास की निवृत्ति होती है, ऐसा होने से दूसरों के साथ सम्बन्ध की इच्छा नहीं रहती अर्थात् एकान्त वासी होकर आत्म-ध्यानों में तत्पर हो जाता है। तात्पर्य यह है कि देहाध्याय की निवृत्ति तथा एकान्त सेवन यह दोनों वाह्यशौच सिद्धि का चिन्ह हैं। अब आभ्यन्तर शौच सिद्धि का चिन्ह कथन करते हैं:—

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥ ४१ ॥

और आभ्यन्तर शौच सिद्ध हो जाने से सत्त्वशुद्धि, सौमनस्य, ऐकाग्र्य, इन्द्रियजय और आत्म दर्शन योग्यता की प्राप्ति होती है। चित्तशुद्धि का नाम "सत्त्वशुद्धि" शुद्धि की अधिकता नाम "सौमनस्य" ईश्वर में एकतान चित्त का नाम "ऐकाग्र्य" इन्द्रियों का अपने अधीन हो जाने का "इन्द्रिय-जय" और विवेक ज्ञान के योग्य होने का नाम "आत्मदर्शन योग्यत्व" है। जब योगी मैत्री आदि भावनाओं का निरन्तर अभ्यास करता है तब इसके रागादिक चित्तमल निवृत्त होकर चित्त शुद्ध हो जाता है और चित्त की शुद्धि होने से स्फटिक की भाँति नितान्त स्वच्छ हुआ एकाग्र होता है और एकाग्रता के अनन्तर योगी को इन्द्रिय जय तथा विवेक ख्याति की योग्यता प्राप्त होती है। यही आभ्यन्तर शौच की सिद्धि का चिन्ह है। अब सन्तोष सिद्धि का चिन्ह कथन करते हैं:—

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ॥ ४२ ॥

सन्तोष सिद्ध होने पर योगी को अनुत्तम सुख की प्राप्ति होती है। जिस सुख से अन्य कोई सुख उत्तम नहीं उसको "अनुत्तम सुख" कहते हैं, संतोष की सिद्धि होने से योगी को ऐसे सुख का लाभ होता है, जैसे कि मनुजी ने भी कहा है कि:-

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
सन्तोष मूलंहि सुखं दुःखमूलं विपर्य्ययः॥ मनु० ४।१२

अर्थ—पुरुष को सन्तोष से ही अनुत्तम सुख प्राप्त हो सकता है असन्तोष से नहीं क्योंकि सन्तोष ही अनुत्तम सुख का मूल है और इसके विपरीत तृष्णा दुःखों का मूल कारण है इसलिये अनुत्तम सुख की इच्छा वाला पुरुष सन्तोष का सेवन करे। अनुत्तम सुख की प्राप्ति ही सन्तोष सिद्धि का चिन्ह है। अब तप सिद्धि का चिन्ह कथन करते हैं:—

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः॥ ४३॥

तप की सिद्धि होने से अशुद्धि क्षय के अनन्तर योगी को शरीर तथा इन्द्रिय सिद्धि की प्राप्ति होती है। शरीर के=सर्वथा स्वस्थ हो जाने का नाम "काय सिद्धि" और दूरदर्शीतथा निकटवर्ती शब्दादि निखिल विषयों के यथार्थ ग्रहण करने की शक्ति का नाम "इन्द्रिय सिद्धि" है रोगादिक से शरीर की तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रसादि विषयों के यथार्थ ग्रहण की अशक्ति इन्द्रियों की अशुद्धि कहलाती है। इन दोनों शक्तियों का प्राप्त होना तप सिद्धि का चिन्ह है। अब स्वाध्याय सिद्धि का चिन्ह कथन करते हैं॥ ४३॥

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः॥ ४४॥

स्वाध्याय के सिद्ध होने से इष्टदेव परमात्मा का दर्शन होता है। अर्थात् परमात्मा में मन का स्थित होना स्वाध्याय सिद्धि

का चिन्ह है। अब ईश्वर प्रणिधान सिद्धि का चिन्ह कथन करते हैं ॥ ४४ ॥

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

ईश्वर प्रणिधान सिद्ध होने से समाधि की प्राप्ति होती है। भाव यह है कि ईश्वर के प्रणिधान भक्ति विशेष से निर्विघ्नता पूर्वक सिद्ध हुए यम, नियमादि योग के अङ्गों द्वारा शीघ्र ही योगी को समाधि का लाभ होता है। अब आसन का लक्षण कहते हैं—

स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥

स्थिर तथा सुखदाई का नाम आसन है। सिद्धासन, पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन इत्यादि अनेक प्रकार के आसन हैं। इन आसनों में से जिसके द्वारा योगी को निश्चलता तथा सुख की प्राप्ति हो वही आसन अनुष्ठेय है। अब आसन सिद्धि का उपाय कथन करते हैं:—

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

स्वभाविक प्रयत्न की शिथिलता और पशु पक्षी सरीसृप= सर्पगोह आदि प्राणियों के अनन्तविध आसनों को चिन्तन करने से आसन की सिद्धि होती है। स्वभावसिद्ध प्रयत्न के न्यून कर देने का नाम "प्रयत्न शैथिल्य" और अनेक विध प्राणियों के आसन की भावना का नाम "अनन्त समापत्ति" है जब योगी निरन्तर प्राणियों के आसन अर्थात् बैठने के प्रकार के चिन्तन करता हुआ स्वयं आसन लगाने की चेष्टा करता है और आसन के समय अपने स्वभाविक प्रयत्न को शिथिल कर देता है तब इसका आसन सिद्ध होता है अर्थात् जिस प्रकार का

आसन लगाना चाहे लगा सकता है। अब आसन सिद्धि का फल कथन करते हैं ॥ ४७ ॥

ततोद्वन्द्वानभिघातः ॥ ४८ ॥

आसन के सिद्ध होने से शीत उष्णादि द्वन्द्वों का प्रतिकूल सम्बन्ध नहीं होता। जब योगी का आसन सिद्ध हो जाता है तब इसको शीत उष्णादि द्वन्द्व नहीं सताते। अब प्राणायाम का लक्षण कथन करते हैं ॥ ४८ ॥

तस्मिन्सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदःप्राणायामः ॥ ४९ ॥

आसन की सिद्धि होने पर श्वास, प्रश्वास की गति के अभाव का नाम प्राणायाम है। बाहर की वायु का भीतर जाना "श्वास" और भीतर की वायु का बाहर आना "प्रश्वास" कहलाता है। योग शास्त्र की रीति से इन दोनों की गति के अभाव को प्राणायाम कहते हैं। अब अवान्तर भेदों के सहित उक्त प्राणायाम का निरूपण करते हैं ॥ ४९ ॥

बाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिःपरिदृष्टोदीर्घसूक्ष्मः ॥ ५० ॥

बाह्यवृत्ति, आभ्यान्तरवृत्ति, तथा स्तम्भवृत्ति इन भेद से प्राणायाम तीन प्रकार का है और वह देश, काल तथा संख्या द्वारा परीक्षा किया हुआ दीर्घ सूक्ष्म कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि जैसे धुनी हुई रूई फैलकर दीर्घ तथा सूक्ष्म हो जाती है वैसे ही अभ्यास द्वारा देश कालादि की वृद्धि से वर्द्धित हुआ प्राणायाम भी दीर्घ तथा सूक्ष्म हो जाता है इसी कारण योगी लोग उसको प्राणायाम कहते हैं। बाहर भीतर के देश का नाम "देश" क्षणों की इयत्ता का नाम "काल" और मात्रा की इयत्ता का नाम

"संख्या" है। वमन के समान वायु दोनों नासिका पुट से फेंकने का नाम "बाह्य वा रेचक "प्राणायाम" वायु को धीरे २ भीतर भरने को "आभ्यान्तर वा पूरक प्राणायाम" भीतर लिये हुए वायु को रोकने का नाम "स्तम्भवृत्ति वा कुम्भक" प्राणायाम जानना चाहिये। अब उक्त तीनों प्राणायामों के फल भूत चतुर्थ प्राणायाम का निरूपण करते हैं:—

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपीचतुर्थः ॥ ५१ ॥

रेचक, पूरक प्राणायाम की अपेक्षा से रहित प्राणायाम का नाम "बाह्य विषय" और पूरक का नाम "आभ्यान्त विषय" है। विषय देश यह दोनों पर्य्याय शब्द हैं, अतिक्रमण को "आक्षेप" कहते हैं और आक्षेपशील का नाम "आक्षेपी" है, जिसका प्राणायाम में रेचक तथा पूरक प्राणायाम के अतिक्रमण से प्राणों का निरोध होता है अर्थात् जिस प्राणायाम में दोनों की अपेक्षा से रहित घड़ी लेवर की भांति असकृत (बार बार) प्रयत्न से शनैः २ प्राणायाम स्थित होते हैं उसको "चतुर्थ प्राणायाम" कहते हैं। इसका दूसरा नाम "केवल कुम्भक" प्राणायाम है। अब प्राणायाम का फल कथन करते हैं:—

ततःक्षीयतेप्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

प्राणायाम से बुद्धिसत्व का आच्छादक क्लेश तथा पाप क्षीण हो जाते हैं। बुद्धि सत्व का नाम "प्रकाश" और उसमें होने वाले विवेक ज्ञान के प्रतिबन्धक अविद्यादि क्लेश तथा तन्मूलक पापों का नाम "आवरण" है। जब योगी का प्राणायाम प्रतिष्ठित होता है तब उक्त दोनों आवरण क्षीण हो जाते हैं और क्षीण होने से पुनः विवेक ज्ञान के प्रतिबन्धक नहीं होते। अब अन्य फल कहते हैं ॥ ५२ ॥

धारणासु चयोग्यतामनसः ॥ ५३ ॥

और धारणाओं में चित्त की (योग्यता) सामर्थ्य हो जाती है। अर्थात् प्राणायाम के सिद्ध होने से चित्त धारणा के योग्य हो जाता है। चित्त का विक्षिप्त न होना ही प्राणायाम सिद्धि का चिन्ह है। अब प्रत्याहार का लक्षण करते हैं:—

स्वविषयासंप्रयोगेचित्तस्वरूपानुकारइवेन्द्रियाणां-प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

अपने २ विषयों के साथ सम्बन्ध न होने के कारण इन्द्रियों की चित्तस्थिति के समान स्थिति का नाम प्रत्याहार है। तात्पर्य्य यह है कि इन्द्रियों का वाह्य विषयों में जाना सहज स्वभाव है, उस सहज स्वभाव के विपरीत अन्तर्मुख होने को प्रत्याहार कहते हैं।

ततःपरमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

प्रत्याहार के सिद्ध होने से इन्द्रियें अत्यन्त वश हो जाती हैं अर्थात् उसको इन्द्रियजय की प्राप्ति होती है।

आदौयोगस्तथाक्लेशामध्येव्यूहश्चतुष्टयम् ।
योगाङ्गपञ्चकंचान्तेपादेस्मिन्नुपवर्णितम् ॥

अर्थ—आदि में योग तथा क्लेशों का मध्य में व्यूह चतुष्टय १ हेय २ हान ३ ग्राह्य और ४ ग्रहण कारण) पश्चात् योगाङ्ग के पाँच अङ्गों को आचार्य ने समाप्त किया शेषाङ्ग ३ को तीसरे पाद में कहेंगे।

॥ इति योग दर्शन भाषानुवादे द्वितीयः साधनपादः ॥



* ओ३म् *

अथ तृतीय विभूतिपादः प्रारभ्यते



पूर्वपाद में योग के बहिरङ्ग ५ अङ्गों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार) का वर्णन हुआ, अब शेष तीन अन्तरङ्ग अङ्गों (धारणा, ध्यान और समाधि) में से छठी धारणा का वर्णन करते हैं :—

देशबन्धश्चित्तस्यधारणा ॥ १ ॥

चित्त का (किसी नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्द्धा, भ्रूमध्य, नेत्र कोण, नासिकाग्र इत्यादि) देश में बान्धना धारणा कहाती है। अपने देह के अवयवों को छोड़कर चन्द्र, सूर्य्य, तारा आदि में वा किसी भी एक देश में चित्त लगाना धारणा है। अब ध्यान का लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥

तत्रप्रत्ययैकतानताध्यानम् ॥ २ ॥

उस (धारणा) में प्रत्यय (ज्ञान) का एकसा रहना ध्यान है। योगी के चित्त में जो ध्येय मात्र को विषय करने वाली विजातीय वृत्तियों के व्यवधान से रहित सजातीय वृत्तिया की एकतानता (एकसा रहना) उसका नाम "ध्यान" है। अब समाधि का लक्षण कहते हैं :—

तदेवार्थमात्रनिर्भासंस्वरूपशून्यमिवसमाधिः ॥३॥

वही (ध्यान) जब उसमें अर्थ (जिस देश में ज्ञान एकसा हुआ हो) मात्र का प्रकाश हो और अपने रूप से शून्य सा हो जावे, उसको समाधि कहते हैं। जैसे 'रक्तपुष्प की समीपता से स्फटिक मणि अपने श्वेत रूप को त्याग कर केवल पुष्प के रक्त

रूपसे रक्त प्रतीत होती है वैसेही ध्यान भी प्रतिदिन के अभ्यास द्वारा अपने ध्यानात्मक रूप को त्याग कर केवल ध्येय रूप से प्रतीत होता है तब उसको "समाधि" कहते हैं। योगी को उक्त समाधि के अभ्यास से ध्येय, अध्येय सर्व पदार्थों का हस्तामलकवत् साक्षात्कार होता है उसको "सम्प्रज्ञात समाधि" कहते हैं। अब योग शास्त्र के अनुसार उक्त तीनों की संज्ञा कथन करते हैः—

त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥

एक विषय में होने वाले तीनों का नाम संयम है। तात्पर्य यह है कि जब धारणा ध्यान, तथा समाधि का समान विषय हो तब योग शास्त्र में इनका नाम "संयम" है ॥ ४ ॥ अब संयम सिद्धि का फल कथन करते हैं:—

तज्जयात्प्रज्ञाऽऽलोकः ॥५ ॥

संयम के सिद्ध हो जाने से योगी को प्रज्ञालोक (निर्मल प्रवाह में बुद्धि की स्थिरता) प्राप्त होती है। इसका फल यह कि बुद्धि निर्मल हो जाती है, उसमें मल न रहने से दूरस्थ वा दीर्घ कालान्तरित विषयों का भी सम्यक् ज्ञान हो जाता है ॥ ५ ॥

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥६॥

उस (संयम) का सवितर्कादि योग भूमियों में विनियोग है। विनियोग नाम सम्बन्ध का है प्रथम पाद में सवितर्क निर्वितर्क आदि भेद से चार प्रकार की योग भूमियों का निरूपण किया है। उन भूमियों में संयम का सम्बन्ध होने से योगी को प्रज्ञालोक की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥ अब धारणादि तीनों को सम्प्रज्ञातयोगी का अन्तरङ्ग साधन कथन करते हैं:—

त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७॥

धारणा, ध्यान, समाधि यह तीनों यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार इन पांचों की अपेक्षा संप्रज्ञात योग के अन्तरङ्ग साधन हैं। जिस अङ्ग का विषय अपने अङ्गी के समान है उसको "अन्तरङ्ग" और दूसरे को "बहिरङ्ग" साधन कहते हैं। इसलिये यमादिक परम्परया साधन होने से बहिरङ्ग और धारणादि तीनों साक्षात् साधन होने से योग के अन्तरङ्ग अङ्ग हैं। अब उक्त धारणादि तीनों को निर्बीज योग का बहिरङ्ग अङ्ग कथन करते हैं:—

तदपिबहिरङ्गनिर्बीजस्य ॥ ८ ॥

धारणादि तीनों भी निर्बीज (असंप्रज्ञात योग) के बहिरङ्ग साधन हैं। धारणादि, ध्यान, समाधि का निरूपण करके अब तत्साध्य विभूतियों का निरूपण करने के लिये उनके विषय परिणाम त्रय का निरूपण करते हुये प्रथम प्रसङ्ग सङ्गति से असम्प्रज्ञात काल में होने वाले निरोध रूप चित्त परिणाम का स्वरूप दिखाते हैं:—

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौनिरोधक्षणचित्तान्वयोनिरोधपरिणामः ॥ ९ ॥

व्युत्थान संस्कार का छिपना और निरोध संस्कार का प्रगट होना और निरोध क्षण के चित्त में जिसका अन्वय हो, उसको निरोध परिणाम कहते हैं। चित्त के ३ परिणाम हैं। उनमें निरोध परिणाम वह है जिसका निरोध समय (क्षण) के चित्त से सम्बन्ध है और जिसमें व्युत्थान (चित्त की क्षिप्ति, मूढ़, विक्षिप्त भूमिकाओं) के संस्कार का तिरोभाव और निरोध के संस्कार का प्रादुर्भाव हो। इसमें, निरोध परिणाम, लक्ष्य है, 'निरोधक्षण चित्तान्वयः' उसका विशेषण है, और 'व्युत्थान निरोध संस्कार

योरभिभवप्रादुर्भावौ' लक्षण है। अब प्रादुर्भूत हुए निरोध संस्कारों का फल कथन करते हैं:—

तस्यप्रशान्तवाहितासंस्कारात् ॥ १० ॥

निरोध रूप संस्कारों से चित्त को प्रशान्त वाहिता की प्राप्ति होती है। अर्थात् व्युत्थान संस्कार के दबने और निरोध संस्कार के उभरते रहने से जो निरोधाभ्यास वा संस्कार होता है, उस संस्कार से चित्त का बहाव प्रशान्त (एक रस) हो जाता है। अब दूसरे सम्प्रज्ञात समाधि में होने वाले चित्त परिणाम का कथन करते हैं:—

सर्वार्थतैकाग्रतयोःक्षयोदयौचित्तस्यसमाधिपरिणामः ॥ ११ ॥

जिसकी सर्वार्थता (सब विषयों में दौड़) का क्षय और एकाग्रता (किसी एक विषय में लाग) का उदय होना (और समाधि समयक चित्त से जिसका सम्बन्ध हो वह) समाधि परिणाम है। प्रतिक्षण अनेक विषयों में चित्त के गमन का नाम "सर्वार्थता" और एक ईश्वर में चित्त की स्थिति का नाम "एकाग्रता" है, तिरोभाव का नाम "क्षय" तथा प्रादुर्भाव का नाम "उदय" है। जब योगी को सम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है तब समाहित चित्त में सर्वार्थता धर्म के क्षय पूर्वक जो एकाग्रता धर्म उदय होता है उसको "समाधि परिणाम" कहते हैं। अब एकाग्रता परिणाम का लक्षण करते हैं:—

ततःपुनःशान्तोदितौतुल्यप्रत्ययौचित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ १२ ॥

सर्वार्थता के क्षय होने पर फिर चित्त में समान प्रकार के

अतीत तथा वर्तमान प्रत्ययों के उदय का नाम एकाग्रता परिणाम है। अतीत का नाम "शान्त" वर्त्तमान का नाम "उदित" और एकही विषय में होनेवाले प्रत्ययों का नाम "तुल्य प्रत्यय" है। वृत्ति, प्रत्यय यह दोनों पर्याय शब्द हैं। तात्पर्य यह है कि व्युत्थान प्रत्यय के निवृत्त होने पर चित्त में एकतान प्रत्ययों के उदय का नाम एकाग्रता परिणाम है। अब चित्त की भाँति भूतादिक पदार्थों में भी उक्त तीन प्रकार के परिणामों का निरूपण करते हैं:—

एतेनभूतेन्द्रियेषुधर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ १३ ॥

चित्त के समान भूत और इन्द्रियों में धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम, अवस्था परिणाम यह तीनों परिणाम जानने चाहिये। पृथिवी आदि का नाम 'भूत' और चक्षु आदि का नाम "इन्द्रिय" है। उनमें पहला परिणाम धर्म परिणाम है। जैसे पृथिवी का परिणाम घट, पट, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि। इसी प्रकार दूसरा जो लक्षण (कालभेद) स है, वह लक्षण परिणाम है, इस दूसरे परिणाम से पहला धर्म परिणाम अलग नहीं होता। जैसे मृत्तिका के पिण्ड से कपाल, कपालों से घट, कपास से सूत सूतों से पट (वस्त्र) इत्यादि धर्म परिणाम दूसरे लक्षण परिणाम में भी साथ रहते हैं अलग नहीं होते। पूर्व घट, वर्तमान् घट, भविष्यद् घट, पूर्व गौ, वर्तमान गौ, भविष्यत् होने वाले गौ। इन दोनों धर्म परिणाम, लक्षण परिणामों को साथ लिये हुवे तीसरा अवस्था परिणाम होता है। जैसे जवान गौ मनुष्य पक्षी, बूढ़े मनुष्य पशु पक्षी आदि वा पुराना नया घट इत्यादि। ऐसे ही आँख आदि धर्म परिणाम, फिर भूत भविष्यत्

वर्तमान् के भेद से लक्षण परिणाम और स्पष्ट अस्पष्ट धुंधला देखना आदि अवस्था परिणाम हैं। इसी प्रकार यह तीनों परिणाम चित्त धर्मी में होते हैं। इन तीनों में एक अवस्था परिणाम ही मुख्य है और धर्म परिणाम तथा लक्षण परिणाम यह दोनों इसी का भेद विशेष है। क्योंकि मृत्तिका ही पूर्व काल तथा पूर्वावस्था को त्याग कर कालान्तर में अवस्थान्तर को प्राप्त हुई घट नाम से कही जाती है वस्तुतः घट मृत्तिका से कोई अन्य पदार्थ नहीं, ऐसा ही सब पदार्थों में जानना चाहिये। इसलिये धर्मी मात्र में होने वाला एक ही अवस्था परिणाम अवान्तर भेद से तीन प्रकार का कथन किया है। जिस धर्मी में उक्त तीन परिणाम होते हैं अब उसका स्वरूप करते हैं:—

शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपातीधर्मी ॥ १४ ॥

जो धर्म हो चुके, वे शान्त; जो वर्तमान हैं, वे उदित और जो होवेंगे, अव्यपदेश्य (बताये वा निर्देश नहीं किये जा सकते हैं किये हैं), इन तीनों धर्मों से जिसका अन्वय अनुपतन वा सम्बन्ध होता है, वह धर्मी है। अर्थात् मृत्तिका में जो पिण्ड, कपाल, घटादि के उत्पन्न करने की योग्यता रूप शक्ति है जिससे घटादि धर्म अनागत से वर्तमान और वर्तमान से अतीतावस्था को प्राप्त होते रहते हैं उसको "धर्म" और उक्तशक्ति के आश्रय मृत्तिका को। "धर्मी" कहते हैं। यहाँ इतना स्मरण रहे कि अनागत के अनन्तर वर्तमान और वर्तमान के अनन्तर अतीत (हो चुके) परिणाम होता है परन्तु अतीत के अनन्तर वर्तमान नहीं होता क्योंकि अनागत तथा वर्तमान का नहीं ॥ १४ ॥ अब उक्त परिणामों का नाना भेद होने में हेतु, कथन करते हैं:—

क्रमान्यत्वंपरिणामान्यत्वेहेतुः ॥ १५ ॥

धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम तथा अवस्था परिणाम के नाना भेद होने में उनके क्रम का भेद कारण है। भाव यह है कि जैसे एक धर्मी में प्रथम धर्म के अनन्तर धर्मान्तर का होना बिना क्रम नहीं हो सकता वैसेही धर्मों का प्रथम काल से कालान्तर की तथा एक अवस्था से अवस्थान्तर की प्राप्ति भी विना क्रम नहीं हो सकता और वह क्रम नाना हैं, इसलिये उक्त तीनों परिणाम भी नाना हैं। क्योंकि पहले मिट्टी, उससे पीछे सनी मट्टी का पिंड, उससे पीछे कपालद्वय, उससे पीछे घट, प्रकार प्रथम बिनोला, फिर उसका वृक्ष, फिर कपास, फिर रूई, फिर तार (सूत), फिर पट (वस्त्र) इत्यादि प्रकार क्रम से एक २ धर्मों को अगला २ धर्म परिणाम होता है, इस लिये परिणाम के बहुत भेदों का कारण क्रम का भेद है अर्थात् क्रम भेद से मिट्टी धर्मी पिण्ड धर्म, पिण्ड धर्मी कपालद्वय धर्म, कपालद्वय धर्मी घट धर्म परिणाम हुआ। ऐसे ही बिनौले से वस्त्र तक परिणाम की भिन्नता है। इसमें से धर्म परिणाम तो कभी २ होता है, प्रतिक्षण नहीं होता, परन्तु लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम प्रतिक्षण नियम से होते ही रहते हैं। तीनों परिणाम विवेक से प्रतिपादन किये गये। अब तीनों परिणामों के संयम (देखो सूत्र ४) का फल (सिद्धि) बताते हैं।

परिणामत्रयसंयमादतीताऽनागतज्ञानम् ॥१६॥

तीनों परिणामों के संयम से भूत भविष्यत् का ज्ञान होता है। जब धारणा ध्यान और समाधि रूप संयम से किसी विषय को योगी प्रतीत करता है तो उसके धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणामों में पूरा २ संयम करने से उस २ पदार्थ की भूत और भविष्यत् स्थिति योगी को ज्ञात हो जाती है ॥ १६ ॥

सिद्धियों वा विभूतियों का वर्णन

यहाँ से सिद्धियों वा विभूतियों का आरम्भ है। इन विभूतियों के संभव असंभव पर अनेक लोग तर्क करते हैं, परन्तु जो विषय अनुभव गम्य है उस पर केवल तर्क से काम नहीं चल सकता। किसी पदार्थ की धारणा ही कितना कठिन काम है, कि चित्त का सर्वथा देश विशेष में बाँध देना, फिर ध्यान उससे भी कठिन है, जिसमें एकसा ही प्रत्यय (ज्ञान) बना रहे, अन्त में समाधि उससे भी गहन है कि जिससे चित्त इतना उस ध्येय विषय में लग जावे कि आपे को भूलकर शून्य सा हो जावे और विषयाकार बन कर केवल विषय का ही प्रकाश रह जावे, भला जब इतना किसी पदार्थ का ग्रहण किया जावे तब उसकी भूत भविष्यत दशाओं का जानना असंभव क्या है। तत्वों का अन्वेषण करने वालों ने वर्तमान कठिन भूमि पिण्ड (पृथ्वी के गोले) को देखकर उसकी पूर्वावस्था पिघली हुई का ज्ञान कर लिया, अन्त में वह जल रहित शुष्क हो जायगी जैसे चन्द्रमा प्रथम तप्त था, फिर जलमय हुआ, अब शुष्क हो गया इत्यादि जान लिया, तब योगी को चित्त के वशीभूत करने पर अतीताऽनागत का ज्ञान क्या बड़ी बात है। इसी प्रकार अन्य विभूतियों पर भी अनुमान द्वारा अयोगी भी योगी की सिद्धियों पर श्रद्धा ला सकते हैं। द्र०—इस पाद में जितने सूत्र विभूतियों के आवेंगे केवल उनके सूत्रार्थ लिखे जावेंगे, योगाभिलाषियों के लिये योगमण्डल द्वारा पृथक् "सच्ची विभूति" नामक पुस्तक जिसमें प्रत्येक विभूतियों पर विशेष रूप से व्याख्या हुई है उसे मगा कर देखेंगे अब संयम से होने वाली दूसरी विभूति का निरूपण करते हैं:—

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ १७ ॥

शब्द, अर्थ और प्रत्यय (ज्ञान) में परस्पर अन्य को अन्य समझने से (सबका) संकर (एकमेक) हो जाता है, (परन्तु) उन (शब्द, अर्थ, ज्ञानों) के विभाग में संयम करने से सब प्राणियों की बोली ज्ञात हो जाती है।

संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥

संयम द्वारा संस्कारों के साक्षात्कार होने से पूर्व जन्म का ज्ञान होता है। अब चौथी विभूति कहते हैं:—

प्रत्ययस्यपरचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥

संयम द्वारा पर पुरुष की चित्तवृत्ति का साक्षात्कार होने से पर के चित्त का ज्ञान होता है। अब पांचवीं विभूति कहते हैं:—

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भेचक्षुःप्रकाशाऽसंप्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥ २० ॥

देह के रूप (चक्षुर्ग्राह्य विषय) में संयम करने से ग्राह्यशक्ति थंभ जाने पर आँख के प्रकाश से संयोग न रहे तब (योगी को) अन्तर्धान (दृष्टिगोचर न होने की) सिद्धि हो जाती है। अब छठीं विभूति कहते हैं:—

सोपक्रमंनिरुपक्रमंचकर्म, तत्संयमादऽपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ २१ ॥

सोपक्रम, निरुपक्रम भेद से कर्म दो प्रकार के हैं उनमें संयम करने (धारणा, ध्यान, समाधि) करने से अथवा अरिष्टों के देखने से मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। जो कर्म शीघ्र शीघ्र फल देवें "सोपक्रम" जो देर से फल देवे "निरुपक्रम" कहाते हैं,

इनमें संयम करने से आयु कितनी होगी, कहां कब देह छुटेगा, इसका ज्ञान हो जाता है। तथा मरण के चिन्ह जो "अरिष्ट" है उनसे भी उपरोक्त ज्ञान हो जाता है। अब सातवीं विभूति कहते हैं:—

मैत्र्यादिषुबलानि ॥ २२ ॥

मैत्री, करुणा, मुदिता इन तीनों भावनाओं में संयम करने से मैत्री आदि बल की प्राप्ति होती है। आठवीं विभूति आगे कहते हैं:—

बलेषुहस्तिबलादीनि ॥ २३ ॥

बलों म (संयम करने से) हाथी आदि के से बल हो जाते हैं। अर्थात् ब्रह्मचर्य से वीर्य लाभ करके जब योगी अपने मनो रूप विद्युत् को संयम की रीति से हाथी आदि बल से मिलाता है तो हस्तिबलादि बलों को प्राप्त करता है। नववीं सिद्धि को अगला सूत्र बताता है:—

प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २४ ॥

प्रवृत्ति के प्रकाश को (सूक्ष्मादि में) रखने से सूक्ष्म, व्यवहित और दूर का ज्ञान हो जाता है। अर्थात् आवश्यक है कि वह सूक्ष्म वा दुरस्थ पदार्थ शब्द प्रमाणादि किसी प्रमाण से सामान्यतया जाना हो, तब उसमें ज्योतिष्मती प्रवृत्ति का प्रकाश रखने से उसका विशेष ज्ञान होगा। अब १०वीं सिद्धि कहते हैं:—

भुवनज्ञानंसूर्य्येसंयमात् ॥ २५ ॥

सूर्य्य में संयम से भुवन का ज्ञान हो जाता है। ११वीं सिद्धि यह है कि:—

(योगदर्शन भाषानुवाद गत ४ अंक से आगे)

चन्द्रे ताराव्यूह ज्ञानम् ॥ २६ ॥

चन्द्र में (संयम) से ताराओं के व्यूह (क्रम न्यास) का ज्ञान हो जाता है। १२वीं विभूति यह है कि :—

ध्रुवे तद् गतिज्ञानम् ॥ २७ ॥

ध्रुव नामक तारे में संयम करने से तारों की गति का ज्ञान होता है। १३वीं विभूति :—

नाभि चक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २८ ॥

नाभि चक्र में संयम करने से शरीरवर्त्ति सम्पूर्ण पदार्थों के परस्पर सम्बन्ध विशेष का ज्ञान हो जाता है। १४वीं विभूति :—

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ २९ ॥

जिह्वा के नीचे कूपाकार नाड़ी विशेष का नाम "कण्ठकूप" है उसमें संयम करने से भूख प्यास की निवृत्ति होती है। १५वीं विभूति :—

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ ३० ॥

छाती में होनेवाली कूर्माकार नाडी का नाम "कूर्मनाडी" है उसमें संयम करने से चित्तस्थैर्य तथा कायस्थैर्य की प्राप्ति होती है। १६वीं विभूति :—

मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३१ ॥

शिर के दोनों कपालों के मध्य ब्रह्मरन्ध्र नामक छिद्र है उस मूर्द्धज्योति में संयम करने से सिद्धों का दर्शन होता है। १७वीं विभूति :—

प्रातिभाद्वासर्वम् ॥ ३२ ॥

प्रातिभ (दिव्य ज्ञान) से पूर्वोक्त सब ज्ञान योगी को हो जाता है। १८वीं विभूति:—

हृदये चित्तसंवित् ॥ ३३ ॥

हृदय में संयम करने से चित्त का साक्षात्कार हो जाता है। १९वीं विभूति: —

सत्त्व पुरुषयोरत्यन्ताऽसंङ्कीर्णयोः प्रत्ययाऽविशेषोभोगः परार्थत्वात्स्वार्थसंयमात्पुरुष ज्ञानम् ॥ ३४ ॥

अत्यन्त भिन्न बुद्धि व आत्मा का भेद रहित एक बोध होना भोग है। यह भोग पर के लिये (निमित्त) होने से स्वार्थ (अपने) में संयम करने से आत्मा का ज्ञान होता है। २०वीं विभूति:—

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शस्वादवार्त्ता जायन्ते ॥ ३५ ॥

आत्मज्ञान होने से दिव्यज्ञान, दिव्य श्रोत्र, दिव्य स्पर्शन, दिव्य चक्षु, दिव्य रसन और दिव्य घ्राण हो जाते हैं। २१वीं विभूति:—

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थानेसिद्धयः ॥ ३६ ॥

उक्त प्रातिभादि सिद्धियें समाधि में विघ्न हैं और व्युत्थान (प्रवृत्ति मार्ग) में दिव्य दर्शनादि छवों सिद्धियें हैं। २२वीं विभूति:—

बन्ध कारण शैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य पर शरीरावेशः ॥ ३७ ॥

चित्त के बन्धन का कारण शिथिल होने और प्रचार मार्ग

का भेद खुल जाने से पर शरीर में संयम द्वारा योगी प्रवेश हो सकता है।

चित्त व्यापक होकर भी जो एक शरीर में बँधा है, उस कारण कर्म बन्धन है, जब समाधि में कर्म बन्धन ढीला हो जाता है अर्थात् जिस योगी ने संयम द्वारा धर्माधर्मरूप प्रारब्ध कर्मों को बन्धन करने में असमर्थ कर दिया है और चित्त के चलने की नाड़ियों में भले प्रकार विज्ञ हो गया है तो अपने चित्त को पर शरीर में प्रवेश करा सकता है और फिर रानी मक्खी के पीछे जैसे मुहाल की अन्य मक्खियें उड़ जाती हैं वा उड़ आती हैं, वैसे चित्त के साथ इन्द्रियाँ भी पर शरीर में चली जाती हैं और चित्त की आज्ञा का पालन इसी शरीर के समान करने लगती हैं। २१वीं विभूती :—

उदान जयाज्जलपङ्क कण्टकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३८ ॥

उदान (वायु विशेष) के जीतने से जल, कीचड और झाड़ काँटे आदि में फंसना नहीं होता और उत्क्रान्ति (स्वेच्छानुसार शरीर त्याग) होता है। उदान वायु शरीर, आकाश तथा अन्नादि की उर्द्धगति का हेतु और नासिका के अग्रभागसे लेकर शिर पर्य्यन्त स्थिति है। जब योगी उसे जीतकर वश्य कर लेता है तब ऊपर को उछलने की शक्ति बढ़ जाने से सूत्रार्थ में लिखे अनुसार उसमें शक्ति प्राप्त हो जाती है। अब २२वीं विभूति को अगला सूत्र बताता है :—

समान जयाज्ज्वलनम् ॥ ३९ ॥

समान (वायु) के जय से तेजस्वी हो जाता है। प्राण, अपान, उदान, 'समान' और व्यान इन पाँच में जो प्राण के ही

भेद हैं चौथा समान है, वह नाभि में स्थित है, जब योगी संयम द्वारा उसको जीत कर वश में कर लेता है तब योगी देह अग्नि के समान तेज से दहकने लगता है। अब २३वीं विभूति सुनिये:—

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध संयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥४०॥

श्रोत्रेन्द्रिय और आकाश तत्त्वके सम्बन्ध में संयम करने से दिव्यशब्द श्रवणशक्ति हो जाती है। ऐसेही त्वचा और वायु के सम्बन्ध में संयम करने से दिव्यस्पर्श, चक्षु और अग्नि के सम्बन्ध में संयम से दिव्य दृष्टि, रसना और जलके सम्बन्ध में संयम से दिव्य स्वादु और नासिका तथा पृथिवी तत्त्व के सम्बन्ध में संयम करने से दिव्य गंध की प्राप्ति होना जानिये, क्योंकि श्रोत्रेन्द्रिय और आकाश में जैसे कार्य्य कारण सम्बन्ध है, वैसे ही त्वचा और वायु तत्वादि में भी है। अब २४वीं बिभूति कहते हैं:—

कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाश गमनम् ॥ ४१ ॥

देह और आकाश (अवकाश) के सम्बन्ध में संयम से और लघु (हलके) तूल (रूई के फोये) में समापत्ति (संयम द्वारा चित्तकी तदाकारता) से आकाश में गमन (सिद्ध होना) यह देह आकाश में ही रहता और जाता आता भी है, इसलिये देहका आकाश (अवकाश) से व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है। जब योगी इस सम्बन्ध में संयम करता है और जब हलके रूई के फोये आदि पदार्थों में संयम करके चित्तको तदाकार कर देता है, तब हलका होकर जलके ऊपर भूमिवत् चलता और मकड़ा के जाले तक के सहारे चल सकता और सूर्यकी किरणों

तक पर चल कर आकाश में यथेष्ट विचर सकता है, व्यास भाष्यका मत है। अब २५वीं विभूति का वर्णन करते हैं :—

बहिर कल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशाऽऽवरणक्षयः ॥ ४२ ॥

शरीर के बाहर भीतर सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा में बिना संकल्प के स्थित हुई चित्तवृत्ति का नाम महा विदेहा धारणा है, इस धारणा की प्राप्ति से बुद्धिके आच्छादिक क्लेशादिकों का क्षय हो जाता है। क्योंकि क्लेश कर्मादि का साधन मन है, जब मनका देहसे बाहर निकाल देना योगी को संकल्प से नहीं किन्तु स्वभाव से ही सिद्ध हो जावे तो फिर उस क्लेश कर्मादि कैसे बांध सकते हैं। २६वी विभूति :—

स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूत जयः ॥ ४३ ॥

(पृथिव्यादि महाभूतों के) स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्त्व में संयम करने से (महा) भूत जय की प्राप्ति होती है। पृथिवी के जैसे स्थूलादि ५ भेद हैं वैसे जलादि के भी ५।५ भेद हैं। इस प्रकार ५ महाभूतों के ५।५ स्थूलादि भेद होकर २५ भेद हैं। पृथिवी आदि व्यक्ति का नाम स्थूल = कठिनता, स्नेह = गीलापन, औष्ण्य, गति तथा अनावरणता रूप धर्मों द्वारा अभिव्यक्त होने वाले पृथिवीत्व आदि सामान्य विशेष का नाम "स्वरूप" पृथिवी आदि भूतों के कारण गन्धादि पञ्च तन्मात्रों का नाम "सूक्ष्म" पृथिवी आदि में कारण रूप से अन्वित गुणत्रय का नाम "अन्वय" भोगापवर्गार्थता का नाम "अर्थवत्त्व" और भूतों को स्वाधीन कर लेने का नाम "भूत जय" है। जो योगी पृथिवी आदि महाभूतों के स्थूल, स्वरूप,

सूक्ष्म, अन्वय तथा अर्थवत्त्व इन पाँच प्रकार के रूपों में संयम करता है उसको भूत जय नामक विभूति प्राप्त होती है। जिससे वह इनके उपयोग से नाना प्रकार के कार्यों को सम्पादन कर सकता है। अब भूत जय का फल कथन करते हैं:—

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ४४ ॥

तब अणिमादि का प्रादुर्भाव और देह की संपदा (ऐश्वर्य) और उन (५ भूतों) के धर्मों से अनभिघात (चोट न लगना) होता है। अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशितृत्व तथा यत्र कामावसायित्व, इन आठ सिद्धियों का नाम "अणिमादि" प्राप्ति का नाम "प्रादुर्भाव" देह ऐश्वर्य का नाम "काय सम्पत्" कठिनता, स्नेह, उष्णता, गति और अनावरणता इन भूतधर्मों के साथ प्रतिकूल सम्बन्ध न होने का नाम "तद्धर्मानभिघात" है। देह को सूक्ष्म कर सकना "अणिमा" देह को बोझ में हलका कर सकना "लघिमा" देह को फैलाव में बड़ा कर सकना "महिमा" इष्ट पदार्थ को समीप प्राप्त कर सकना "प्राप्ति" ये चार सिद्धि वा विभूतियाँ पाँच २ महाभूतों के स्थूल रूप में संयम से उत्पन्न होती हैं। इच्छा का पूरा होना "प्राकाम्य" उस में रुकावट न होना, यह 'स्वरूप' संयम का फल है। महाभूतों और पाञ्चभौतिक प्राणियों को वश में कर सकना "वशित्व" यह 'सूक्ष्म' रूपमें संयम का फल है। ऐश्वर्य सम्पादन करने की सामर्थ्य का "ईशितृत्व" यह "अन्वय" संयम का फल है। जो सकल्प करे सो पूरा हो "यत्रकामावसायित्व" यह "अर्थवत्व" संयम का फल है। भोजवृत्ति में ९वीं भारी हो सकना नाम की भी विभूति "गरिमा" बताया

है। "कायसम्पत्" का ब्यौरा ४५वें सूत्र में है। पृथिवी आदि भूतों के कठिनता आदि का योगी के कामों में विघ्न न कर सकना "तद्धर्मऽनभिघात" नाम की विभूति है। भाव यह है कि जिस योगी को पृथिवी आदि भूतों का वशीकार हो गया है उसको इनसे यथोपयोग कार्य लेने के समय कठिनतादि धर्मों का प्रतिबन्ध नहीं होता और इनका प्रतिबन्ध न होने से निर्विघ्नता पूर्वक प्रवृत्त हुआ योगी सब कार्यों को सहज में ही सिद्ध कर लेता है। अब कायसम्पत् का निरूपण करते हैं:—

रूपलावण्य बल वज्र संहननत्वानि कायसंपत् ॥४५॥

रूप, लावण्य, बल तथा वज्र संहननत्व इन चारों का नाम कायसंपत् है। दर्शनीय सुखाकृति का उत्तम होना "रूप" और सर्वाङ्ग सुन्दर होना "लावण्य" और वज्र (हीरा आदि) के तुल्य शरीरावयवों को दृढ (मज़बूत) होना "वज्र संहननत्व" कहाता। ये चारो देह ऐश्वर्य भूत जयी योगी को प्राप्त होते हैं। अब तक ग्राह्य पदार्थों के संयम की सिद्धियाँ (विभूतियाँ) कहीं, आगे ग्रहण = साधनों के संयम की सिद्धियाँ निरूपण करते हुए कहते हैं:—

ग्रहण स्वरूपास्मितान्वयार्थवत्व संयमादिन्द्रिय जयः ॥ ४६ ॥

ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्व में संयम करने से इन्द्रिय जीते जाते है। चक्षुरादि इन्द्रियों की देखना आदिवृत्तियें = १ ग्रहण, गोलकादि बनावट स्थूल है = २ स्वरूप उनके कारण सात्विक अहङ्कार = ३ अस्मिता, उस अहङ्कार के साथ के साथ लगे हुये ३ गुण = ४ अन्वय और उन ३ गुणों

के साथ लगे भोगमोक्षार्थत्वालापन=५ अर्थवत्व कहाते हैं। इनमें संयम करने से इन्द्रिय वश में हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

अब इन्द्रिय जयका फल कथन करते हैं:—

ततोमनोजवित्यं विकरणभावः प्रधान जयश्च ॥४७॥

इन्द्रिय जय से मनोजवित्व विकरण भाव और प्रधान जयकी प्राप्ति होती है। मन के समान देह में वेग अर्थात् शीघ्र गामित्व को १ मनोजवित्व कहते हैं। देह से बाहर इन्द्रियों को भेज सकना २–विकरण भाव और प्रकृति के समस्त कार्य पदार्थों को स्वाधीन कर लेना ३–प्रधान जय है, ये ३ सिद्धि वा विभूति मिलकर "मधु प्रतीक" इस लिये कहाती हैं कि जैसे शहद के एक देश में भी सर्व देश के समान स्वाद आता है वैसे इनमें सर्वत्र सब इन्द्रियों से स्वाद लेने की शक्ति हो जाती है। "ग्रहण" में संयम का फल=मनोजवित्व, "स्वरूप" में संयम का फल=विकरण भाव और "अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्व" में संयम का फल=प्रधान जय है ॥ ४७ ॥

ग्राह्य पदार्थों के संयम का फल कहकर, आगे ग्रहीताओं में संयम का फल कहते हैं:—

सत्व पुरुषान्यताख्यातिमात्रस्यसर्वभावाधिष्ठातृत्वंसर्वज्ञातृत्वंच ॥ ४८ ॥

सत्व और पुरुष के भेद ज्ञान का (फल) सर्वभावों का अधिष्ठाता होना और सर्वज्ञ होना है। तात्पर्य यह है कि जो योगी दृढ अभ्यास द्वारा आत्मज्ञान में स्थित चित्त हुआ प्रति क्षण परमात्मानन्द का अनुभव करता है वह प्राणीमात्र का पूजनीय तथा सर्व पदार्थों का ज्ञाता हो जाता है ॥ ४८ ॥

अब विवेक ज्ञान का मुख्य फल कथन करते हैं:—

तद्वैराग्यादपि दोषबिजक्षये कैवल्यम् ॥ ४९ ॥

जब उसमें भी वैराग्य से दोषों के बीज का क्षय हो जावे तब कैवल्य (मुक्ति) हो जाती है। पर वैराग्यक, नाम 'वैराग्य' अविद्यादि पाँच क्लेशों का नाम "दोष" और उनके संस्कारों का नाम "दोष बीज" है। इनसे उक्त क्लेश उत्पन्न होते हैं, जब योगी को विवेक ख्याति में भी वैराग्य उत्पन्न हो जाता है तब इसके चित्त में अनादि काल से रहने वाले अविद्यादि क्लेशों के संस्कार सर्वथा क्षय हो जाते हैं उनके क्षय होने से योगीको सहज ही में असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति हो जाती है और उसकी प्राप्ति होने से वह मुक्त हो जाता है ॥ ४९ ॥

अब कैवल्य के साधन समाधि में प्रवृत हुए योगी को भावी विघ्नों की निवृत्ति का उपदेश करते हैं:—

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाऽकरणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात् ॥ ५० ॥

स्थानधारी महान पुरुषों के निमन्त्रण करने पर सङ्ग तथा स्मय नहीं करना चाहिये, इसलिये कि उसके करने से अनिष्ठ की प्राप्ति होती है। प्रीति का नाम "संग" और गर्व का नाम "स्मय" है। महान् पुरुषों के निमंत्रण से गर्व और प्रीति करने के कारण योग भ्रष्ट हुआ योगी पुनः जन्म मरण रूप संसार दुःख को प्राप्त होता है। अब ४३वीं विभूति विवेकज ज्ञान का वर्णन करते हैं:—

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५१ ॥

क्षण और क्षणों के क्रम में संयम करने से विवेकज ज्ञान

होता है। जैसे परमाणु सबसे छोटा है वैसे काल का सबसे छोटा भाग जिसके फिर भाग न हो सकें उसको यहाँ योग-शास्त्र में क्षण माना है। (एक जीवात्मा और दूसरे परमात्मा इन दो चेतनों को छोड़कर) क्षण २ परिणामी (बदलने वाले) हैं, इसलिये जब योगी काल के सबसे छोटे भाग क्षण और क्षणों के क्रम में संयम करता है तो क्षण और क्षण क्रम में बदलने वाले सब परिणामी पदार्थों को बदलना जानकर उसको आत्मा और अनात्मा वा जड चेतन के विवेक से विवेकज ज्ञान हो जाता है। अब विवेकज ज्ञान का फल कथन करते हैं:—

जातिलक्षणदेशैरन्यताऽनवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥ ५२ ॥

जाति, लक्षण और देश से भिन्नता का निश्चय न कर सकने से दो तुल्य पदार्थों में भी विवेकजज्ञान से भिन्नता का ज्ञान हो जाता है। हम लोग एक पदार्थ को दूसरे से भिन्न समझने में जाति, लक्षण और देश का सहारा लेते हैं। गौ और घोडे में भेद का निश्चय जाति से होता है, दो गौवों में भेद का निश्चय कपिलत्वादि लक्षण से होता है और दोनों गौ कपिल-त्वादि लक्षणों में भी तुल्य हों तो देश (पूर्व पश्चिम आदि) से भेद की पहिचान होती है। पर जब साधारण जन जाति लक्षण और देश से भी पदार्थों की एक दूसरे से अन्यता (भिन्नता) को न जान सकें तब पूर्वोक्त विवेकज ज्ञान से योगी यहां तक जान सकता है कि एक परमाणु से दूसरे परमाणु में भी क्या भिन्नता है। अब विवेकज ज्ञान का भी लक्षण बताते हैं:—

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकज-ज्ञानम् ॥ ५३ ॥

अपने आप उपजे हुवे, सब को विषय करने वाले, सब प्रकार से विषय करने वाले और क्रमनिरपेक्ष ज्ञानों को विवेकज ज्ञान कहते हैं। जब योगी क्षण और क्षणों के क्रम में संयम करता है तब उसको उनका साक्षात्कार हो जाने से एकही काल में अतीत (भूत) अनागत (भविष्यत्) तथा वर्त्तमान सम्पूर्ण पदार्थों को विषय करने वाला विना उपदेश के अपनी प्रतिभा से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसका नाम विवेक ज्ञान है।

द्र०—यहां तक विभूति वा सिद्धियां कही, पर योगी को इन सिद्धियों की प्राप्ति श्रद्धा बढ़ाने मात्र के लिये कही गई हैं—वास्तव में तो दुःख रहित मुक्ति पद पाना ही प्रत्येक मनुष्य को योग द्वारा इष्ट है, इसलिये इन सब विभूतियों से वैराग्य करके इन सब उपायों से बुद्धि सत्व और आत्मा (पुरुष) को एक सा शुद्ध निर्मल करना चाहिये, सो आगे कहते हैं:—

सत्वपुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम् ॥ ५४ ॥

सत्व और पुरुष की शुद्धि समान होने पर कैवल्य (मोक्ष) होता है। भाव यह है कि विवेक ख्याति के उदय होने से संसार के हेतु क्लेश वीज जब क्षय हो जाते हैं तब बुद्धि पुरुष के समान शुद्धि कही जाती है और अविवेक दशा में बुद्धि के द्वारा होने वाले भोग की जब निवृत्ति हो जाती है तब पुरुष की शुद्धि कही जाती है, इस प्रकार जब योगी को उक्त दोनों शुद्धियें प्राप्त हो जाती हैं तब वह मुक्त हो जाता है। इसलिये कैवल्याभिलाषी योगियों को विवेक ख्याति का ही सम्पादन करना आवश्यक है।

द्र०—विभूतिपाद में सूत्र संख्या २० के आगे एक सूत्र

विशेष व्यासकृत टीका में नहीं परन्तु भोज वृत्ति में इसका पाठ है "एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तंवेदितव्यम्" = इससे शब्दादि (शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध) को अन्तर्धान (छिपाव) भी कहा जानो।

योगी के इस अन्तर्धान विभूति पर लोग आश्चर्य करते हैं, परन्तु योगी आश्चर्य योग्य बन जाता है। जब कि यूरोप के विद्वानों ने शब्दों को पकड कर फोनोग्राफ़ में भर दिया, बिना तार के वायु में समाचार भेजने की रीति निकाल ली, वैद्यों ने संमोहन (क्लोरोफ़ार्म आदि) द्वारा स्पर्शादि ज्ञान को रोक दिया, इत्यादि पदार्थ स्थूल पदार्थों में जब आश्चर्य न रहे, तब योगी जो धारणा-ध्यान-समाधि रूप संयम करना जाने, उसकी शक्ति से क्या बाहर है कि वह अपने देह के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धों को रोक ले और किसी को ज्ञान न होने दे।

॥ इति योगदर्शन भाषानुवादे विभूतिपादस्तृतीयः ॥

---

* ओ३म् *

अथ चतुर्थ कैवल्यपादः प्रारभ्यते

प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पाद में योग, योग के साधन और योग की विभूतियों का विस्तार पूर्वक निरूपण किया, अब इस चतुर्थ पाद में कैवल्य का निरूपण करते हुए कैवल्य (मुक्ति) योग्य चित्त के निर्णयार्थ पाँच प्रकार के सिद्ध चित्तों का कथन करते हैं:—

जन्मौषधि मंत्र तपस्समाधिजाः सिद्धयः ॥ १ ॥

जन्म, औषधि, मंत्र, तपस् और समाधि ये उत्पन्न हुई पांच प्रकार की सिद्धियें हैं। १—सिद्धि जन्म से उत्पन्न होती है, जैसे पक्षी आदि जन्म से आकाश में उड़ना आदि सिद्धि को प्राप्त हैं। २—सिद्धि औषधि खाने से होती है, जिसके काय-कल्प पर्य्यन्त अनेक भेदों का वर्णन वैद्यक शास्त्र का विषय है। ३—सिद्धि मंत्र के जप से होती है। जिसमें "तज्जपस्तदर्थ भावनम्" यो० द० पा० १ सू० २८ और "स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः" यो० द० पा० २ सू० ४४ के अनुसार सिद्धि होती हैं। ४—तपस् सिद्धि होती है, जिसका वर्णन "कायेन्द्रिय सिद्धि" पा० २ सू० ४३ में किया गया है और ५वीं सिद्धि समाधि से है, जिसका वर्णन समस्त विभूतिपाद में किया गया है। भाव यह है कि चित्त सिद्धि के यह पांच प्रकार हैं इन प्रकारों से योगी का चित्त सिद्ध हो जाता है और चित्त की सिद्धि होने से उसके शरीर तथा इन्द्रियों में दिव्य सामर्थ्य की प्राप्ति होती है। पूर्वोक्त साधनों से शरीर तथा इन्द्रियें पूर्व से विलक्षण कैसे हो जाते हैं? उत्तरः—

जात्यन्तर परिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

प्रकृति के चारों ओर से आभरने से जात्यन्तर के सा परिणाम हो जाता है। भाव यह है कि चित्त और इन्द्रियों की प्रकृति जो अहङ्कारादिक हैं उनमें अन्य प्रकृति के अवयवों की आरम्भ कर देना जात्यन्तर परिणाम कहलाता है अर्थात् शरीर का औषधि से और चित्त तथा इन्द्रियों का स्वाध्यायादि संस्कारों से परिवर्त्तन हो जाता है। तो क्या औषधि सेवनादि निमित्त प्रकृतियों के प्रेरक हैं? कि वे बाहर से अन्य प्रकृतियों को खींच कर देह में प्रविष्ठ करा दें? उत्तरः—

निमित्तमप्रयोजकंप्रकृतीनांवरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥ ३ ॥

प्रकृतियों का प्रयोजक (प्रेरक) तो निमित्त ? (औषधि सेवनादि) नहीं है परन्तु उस (औषधि सेवनादि समाधि पर्य्यन्त से वरण भेद (प्रतिबन्धक) अवश्य होता है, किसान के समान। जैसे किसान (कृषक) एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जल ले जाने के लिये जल के प्रतिबन्धक (बाढ़) को तोड़ देता है तब वह जल स्वयं अन्य क्षेत्र में पहुंच जाता है, इसी प्रकार उक्त पांच प्रकारों से चित्त की सिद्धि होने के लिये धर्म केवल विघ्नों को हटाता है, विघ्नों के दूर होने से उक्त सिद्धियों का यह स्वभाव है कि वह चित्त और इन्द्रियों के जन्म को बदल देती है। यहां परिवर्त्तन होने के अर्थ चित्त का स्वभाव और इन्द्रियों के सामर्थ्य बदल जाने के हैं न कि योगी के शरीर बदल जाने के, यदि जात्यन्तर परिणाम शब्द से शरीर के परिवर्तन होने का अभिप्राय लिया जाय तो पूर्वोक्त सब कर्म निष्फल हो जाते हैं। यह दोष तो चित्त के परिवर्त्तन होने में भी समान है ? उत्तरः—

निर्माण चित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥

अस्मिता (अहंतत्त्व) मात्र से निर्माण चित्तों को (उत्पन्न करता है)। तप स्वाध्यायादि साधनों से चित्त को सिद्ध करने के अर्थ नूतन उत्पन्न करने के नहीं किन्तु पूर्व सिद्ध चित्त को सुधार लेने के हैं और जो प्रकृत्यापूर से चित्त का निर्माण करना कथन किया गया है वह उपचार से है वास्तव नहीं। अर्थात् योगी अस्मिता मात्र (केवल अहंतत्व जो चित्तों का उपादान कारण है) से अनेक चित्तों को उत्पन्न कर लेता है ॥४॥ और तबः—

प्रवृत्ति भेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥

अनेक चित्तों की जाने आने रूप क्रिया में एक चित्त प्रेरक होता है। अर्थात् ४थे सूत्र के अनुसार अहंतत्त्व से योगी अनेक चित्त उत्पन्न करके उनको अपने चित्त कृत प्रेरणा से भिन्न २ विषयों में प्रेरित करता है। जिस प्रकार पृथिवी खाद जल और वायु में रहे हुये गेहूँ उत्पन्न करने वाले त्रसरेणुओं से एक गेहूँ का बीज अनेक बीजों को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार वायु के साथ रमे हुवे अहंतत्त्व से योगी का चित्त अनेक अन्य चित्तों को उत्पन्न करके स्वयं उनका प्रेरक बन जाता है ॥ ५ ॥

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

पाँच प्रकार के चित्तों में से ध्यान – समाधि रूप सिद्धि से सिद्ध चित्त क्लेशादि वासनाओं रहित हुआ कैवल्य का उपयोगी होता है। अर्थात् उन ५ प्रकार = १ जन्म, २ औषधि, ३ मंत्र, ४ तप और ५ समाधि से उत्पन्न हुवे चित्तों में से ध्यानोत्पन्न (समाधि स उत्पन्न) चित्त में आशय (क्लेशवासना और कर्म वासना) नही होते, इसलिये कैवल्य (मुक्ति) के लिये ध्यानज चित्त की प्रशंसा है। (प्रश्न) तो क्या योगी कर्म शून्य हो जाता है ? (उत्तर) नहीं, किन्तुः—

कर्माऽशुक्लाऽकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥

योगी के कर्म अशुक्ला कृष्ण होते हैं और योगी से भिन्न पुरुषों के कर्म तीन प्रकार के होते हैं। योगी का कर्म निष्काम होने से नतो पुण्य में। गिना जावे, न पाप में। परन्तु अन्यों के कर्म तीन प्रकार के होते हैं १ शुक्ल = पुण्य, २ अशुक्ल वा कृष्ण = पाप और ३ शुक्ल कृष्ण = पुण्य पाप मिश्रित। इनमें से १—तपः स्वाध्यायादि सात्त्विक कर्म पुण्य हैं। २—ब्रह्महत्यादि तामस

कर्म पाप हैं। और ३—रजोगुणी कर्म राज्यादि पालन जिसमें किसी पर अनुग्रह, किसी पर निग्रह (ताडन वा बन्धन) करके काम चलाया जाता है=पुण्य पाप मिश्रित है। (प्रश्न) तो ऐसे मिश्रित कर्मों से मनुष्य जन्म कैसे हो सकता है ? (उत्तर):—

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाऽभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥

उक्त तीन प्रकार के कर्मों में से मनुष्य जन्म के फल देने के लिये अभिमुख जो वासनायें हैं उन्हीं की प्रकटता मनुष्य जन्म के लिये होती हैं इतर तिर्यक् जन्म के देने वाली वासनाओं को नहीं। यद्यपि उक्त तीनों प्रकार के कर्मों में तिर्यक योनि देने वाले कर्म भी सम्मिलित हैं परन्तु जिस २ योनि के कर्मों का आधिक्य होता प्रथम वही जन्म होते हैं इसलिए कर्मों के मिश्रित होने से भी कोई दोष नहीं आता। जन्म लेतेही अपनी जाति (मनुष्यादि) के अनुसारही स्तन्यदुग्धपानादि भोग भोगने लगता है। ऊँट का बच्चा कांटे ही चबाने लगता है। बिल्ली का बच्चा चूहों पर झपटने लगता है, तथा मछली तिरने और अपना भोग भोगने लगती है। (प्रश्न) जब एक वा कई मनुष्य जन्म हो चुके तो तीर्यक जन्म देने वाले कर्मों में बहुत अन्तर पड गया फिर वह तिर्यक जन्म कैसे ? (उत्तर):—

जातिदेश काल व्यवहिता नामप्यानन्तर्यं स्मृति संस्कारयोरेकरूपत्त्वात् ॥ ६ ॥

जाति देश और काल से व्यवधान (फासला) पाई हुई (वासनाओं) में भी निरन्तरता रहती है, (क्योंकि) स्मृति और संस्कार के एकसा होने से। (प्रश्न) शरीर प्रथम हो तो उससे कर्म उत्पन्न होकर उनकी वासनाएँ बनें और प्रथम

वासनाएँ हों तो उनसे शरीर बनें, यह अन्योऽन्याश्रय दोष वासनाओं से जन्म मानने में आता है ? (उत्तर) :—

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥ १० ॥

उक्त वासनाओं का अनादिपन जीने के इच्छा के नित्य होने से पाया जाता है । अर्थात् बीज से अंकुर अंकुर से बीज यह अनादि प्रवाह है, इसी प्रकार वासनाओं से जन्म, जन्म से वासना अनादि प्रवाह है । सबसे पहला जन्म कोई नहीं इसलिये सबसे पहले कोई वासना नहीं कही जा सकती, इस कारण वासनाओं को अनादित्व है । (प्रश्न) वासना अनादि हैं तो उनका अभाव केसे हो सकता है ? (उत्तर) : —

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ ११ ॥

(वासनायें) हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन से संग्रहीत होती हैं इस कारण उन (हेतु आदि ४) के अभाव होने पर उन (वासनाओं) का अभाव हो जाता है । वासनाओं का मूल कारण अविद्या है, उसका नाश हो जाने से वासनाओं का स्वयं नाश हो जाता है क्योंकि अविद्या रूपी दण्ड से यह षट् (धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, राग, द्वेष) अरों वाला संसार चक्र भ्रमण करता है अर्थात् प्रथम जीव को धर्म से सुख तथा अधर्म से दुःख, फिर सुख से सुख और उसके साधनों में राग और दुःख से दुःख तथा उसके साधनों में द्वेष फिर राग द्वेष से प्रयत्न = शरीर की चेष्टा होना, चेष्टा से पर पीड़ा तथा पर अनुग्रह होना और उससे धर्माधर्म उत्पन्न होते हैं और उनसे फिर सुख दुःख तथा फिर सुख दुःख से फिर राग द्वेष होता है । (प्रश्न) योग शास्त्री लोग तो सत्कार्यवादी हैं, ये अभाव से

भाव वा भाव से अभाव नहीं मानते, फिर वासनाओं का नाश कैसे हो सकता है ? (उत्तर):—

अतीताऽनागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदात्धर्माणाम् ॥ १२ ॥

महत्तत्वादि पदार्थों के काल भेद से भूत भविष्यत् वस्तु अपने स्वरूप से विद्यमान् रहती है। अर्थात् वस्तु के स्वरूप का सर्वथा नाश नहीं होता अतएव वर्तमान अवस्था से अतीत (भूतकाल) अवस्था को प्राप्त होना ही वासनाओं का नाश है, इस प्रकार योग के सत्कार्य वाद की हानि नहीं। अब उक्त धर्मों की गुण रूपता कथन करते हैं:—

तेऽव्यक्त सूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥

(व्यक्तसूक्ष्मा) भूत, भविष्यत्, वर्तमान रूप जो अनेक प्रकार के पदार्थ हैं वह सब तीन गुणों का स्वरूप हैं। अर्थात् सत्व, रज, तम नाम ३ गुणों से जितना कार्य प्रपञ्च महत्तत्त्वादि रूप में परिणित होकर भूत-भविष्य वा वर्तमान अवस्था में है वह व्यक्त और सूक्ष्म दो भेद वाला है। जब वर्तमान हो तब व्यक्त (प्रकट) कहाता है और जब भूत व भविष्यत् हो तब सूक्ष्म कहाता है। (प्रश्न) तीनों गुणों के कार्यों में यह पृथिवी है, यह जल है इस प्रकार की एकता रूप कैसे ? (उत्तर):—

परिणामैकत्वाद्वस्तु तत्त्वम् ॥ १४ ॥

परिणाम की एकता से वस्तुओं की एक रूपता पाई जाती है। जैसे वत्ती, तैल, अग्नि इन तीनों से मिलकर सिद्ध हुए दीपक में एकोऽयंदीपः = यह एक दीपक है, ऐसा व्यवहार होता है, इसी प्रकार एक संख्या की भांति परस्पर अङ्गाङ्गि भाव से

मिले हुए तीनों गुणों के एक परिणाम को एका पृथिवी = यह एक पृथिवी है, तथा एक जलम् = यह एक जल है, इस प्रकार एकत्व की प्रतीति होती है। यहाँ इतना स्मरण रहे कि सत्व प्रधान गुणों का इन्द्रिय रूप से और तम प्रधान गुणों का विषय रूप से एक परिणाम है। (प्रश्न) कोई पदार्थ भी एक रस स्थिर नहीं सब क्षणिक हैं और विज्ञान स्वरूप हैं फिर प्रकृति पुरुष का नित्यत्व कैसे ? (उत्तर):—

वस्तु साम्ये चित्त भेदात्तयो र्विभक्तः पन्थाः॥ १५॥

पदार्थ के एक होने पर भी ज्ञान के अनेक होने से दोनों का भिन्न मार्ग है। जैसेः—एक स्त्री रूपवस्तु में पति को सुख, सपत्नी के चित्त को दुःख और सन्यासी के चित्त को वैराग्य होता है तो स्त्री रूपस्तु यदि चित्त से भिन्न सद्रूप न होती तो अनेक चित्तों वाले पति, सपत्नी और सन्यासी को सुख, दुःख और वैराग्य भिन्न २ न होते। इससे पाया जाता है कि चित्त और स्त्री आदि ज्ञेय वस्तु एक नहीं। यदि कहो कि वस्तु केवल एक चित्त के अधीन ही हो जाता है, अनेक चित्तों के नहीं। सो नहीं बनता:—

न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु, तदप्रमाणकं तदा किं स्यात्॥ १६॥

वस्तु एक चित्त के ही अधीन नहीं, जब कि उस (वस्तु) में प्रमाण = चित्त न लगा रहे तब क्या हो ? यह कहना ठीक नहीं कि वस्तु एक चित्त के अधीन है, क्योंकि हम देखते हैं कि एक समय चित्त एक वस्तु को ग्रहण करता है दूसरे समय उस वस्तु को छोड़कर अन्य में लग जाता है, तो क्या जब चित्त दूसरी वस्तु में जा लगा तब पहली वस्तु अप्रमाण है ?

अर्थात् विना चित्त के हैं ? यदि नहीं तो अन्यों को वही वस्तु क्यों उपलब्ध होती है ? यदि है तो क्या है ? बस मानना पड़ेगा कि चित्त से अर्थ (चित्त का विषय घटपट स्त्री पुत्रादि) भिन्न है, चित्त ही का विकार मात्र नहीं। इसी से शंकरमतानुयिका दृष्टि सृष्टि वाद भी सूत्रकार के तर्कों से खण्डित हुवा। अब वाह्यवस्तु विषयक कभी ज्ञान होना और कभी न होना, इसका कारण कथन करते हैं :—

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्यवस्तुज्ञाताऽज्ञातम् ॥१७॥

वाह्य पदार्थ कभी ज्ञाता होता है और कभी अज्ञात होता है वह चित्त के उस वस्तु विषयक सम्बन्ध की अपेक्षा रखने से होता है। अर्थात् जिस समय विषय का चित्त के साथ इन्द्रियों द्वारा सम्बन्ध होता है तब वह ज्ञान होता है और अन्य समय अज्ञात होता है। चित्त से भिन्न विषयों को स्थापन करके चित्त को परिणामी किया, अब आत्मा को चित्त से भिन्न अपरिणामी कथन करते हैं :—

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोःपुरुषस्याऽपरिणामित्वात् ॥ १८ ॥

(परन्तु) चित्त की वृत्तियें सदा ज्ञात रहती हैं क्योंकि उस (चित्त) का प्रभु पुरुष (जीवात्मा) परिणामी नहीं। जैसा कि अहं सुखी, अहं दुःखी, इत्यादि स्थलों में कदापि यह सन्देह नहीं होता कि मैं सुखी हूँ अथवा नहीं, इससे पाया गया कि परिणामी चित्त से भिन्न ज्ञाता पुरुष अपरिणामी है। अब यह शङ्का होती है कि चित्त ही स्वतःप्रकाश है और वह क्षणिक है उससे भिन्न अपरिणामी पुरुष कोई नहीं। उत्तर :—

न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ १९ ॥

जड होने के कारण वह चित्त स्वयं प्रकाश नहीं है। इससे जाना जाता है कि अपरिणामी स्वयं प्रकाश चेतन आत्मा चित्त से भिन्न है, चित्त स्वयं आत्मा नहीं। अब विज्ञानवादी के मत में और दोष कहते हैं :—

एक समये चोभयाऽनवधारणम् ॥ २० ॥

और एकही काल में चित्त और विषय का ग्रहण नहीं हो सकता। चित्त को स्वभासक तथा विषयाभासक मानने से क्षणिक विज्ञानवादि के मत में चित्त तथा विषय का एकही काल में प्रकाश होना युक्ति विरुद्ध है। अब चित्त के प्रकाशक अन्य चित्त मानने में दोष कहते हैं :—

चित्तान्तरदृश्येबुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥ २१ ॥

यदि एक चित्त को चित्तान्तर (अन्यचित्त) का दृश्य मानें तो चित्त का चित्त माना रूप अनवस्था दोष होगा और स्मृतियों को संकर (एकमेक) हो जायगा। अतएव एक अपरिणामी आत्मा मानना ही ठीक है। क्योंकि एक काल में अनेक भिन्न विषयक स्मृति होंगी तो इन्द्रियों की प्रवृत्ति किस चित्त की किस स्मृति के अनुकूल होगी ? स्मृति में परस्वर टक्कर खायेंगी और इन्द्रियें अपने काममें प्रवृत्त न हो सकेंगी। अब यह कहते हैं कि आत्माकिस प्रकार चित्त को प्रकाशित करता है :—

चित्तेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धि संवेदनम् ॥ २२ ॥

इन्द्रियों की भाँति विषयों के सम्बन्ध से रहित चेतन

स्वरूप पुरुष स्वसम्बन्ध वाले चित्त के समानाकार को प्राप्त होकर अपने चित्त को प्रकाशता है। जैसे शुद्ध स्फटिक मणि को बीच में रखकर तीन और तीन रंग के पुष्प रख दो तो चौथी ओर जिधर कोई पुष्प नहीं है उधर से स्फटिक मणि शुद्ध श्वेत निर्मल जान पड़ेगा और नील पुष्प की ओर उसकी छाया (झलक) से स्फटिक भी नीला जान पड़ेगा और रक्त वर्ण पुष्प की ओर से रक्त प्रतीत होगा तथा पीत वर्ण पुष्प की ओर से स्फटिक भी पीत समझ पड़ेगा, पर वास्तव में स्फटिक स्वयं शुद्ध है, उसमें रक्त, पीत, नील कोई रंग नहीं, ऐसे ही केवल पुरुष में न वासना, न स्मृति, न कुछ है, किन्तु पुरुष में जैसे चित्त की समीपता है, वह तदाकार जान पड़ता है इसी से पुरुष अपने चित्त को ज्ञात करता है। अब चित्त के अनेक रूपता का निरूपण करते हैं :—

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ २३ ॥

चित्त विषय और पुरुष के साथ सम्बन्धवाला होने से अनेक रूप है। (प्रश्न) भोग की हेतु भूत अनेक विचित्र वासनाओं से विचित्र चित्तही को आत्मा क्यों न मान लिया जावे? उनसे भिन्न भोक्ता पुरुष जो प्रसिद्ध नहीं, क्यों माना जावे? उत्तर :—

तदऽसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपिरार्थं संहत्यकारित्वात् ॥ २४ ॥

वह (चित्त) अनगिनत वासनाओं से चित्र (रंग विरंग) भी पारार्थ (पुरुष के लिये) है क्योंकि जुड़कर काम करनेवाला है। तात्पर्य यह है कि जिसके लिये चित्त भोग तथा मोक्ष सम्पादन करता है वह चित्त से भिन्न भोक्ताही आत्मा है।

पूर्वोक्त युक्तियों द्वारा चित्त से भिन्न आत्मा को सिद्ध करके अब विवेकी पुरुष की कृत कृत्यता कथन करते हैं:—

विशेषदर्शिन आत्मभाव भावनाविनिवृत्तिः ॥२५॥

विवेकी पुरुष की आत्मभाव भावना निवृत्त हो जाती है। तात्पर्य यह है कि आत्मा का साक्षात्कार होने से चित्त सम्बन्धि जन्मादिक विचित्र परिणाम के निश्चय से जन्मादि भावना को निवृत्ति द्वारा पुरुष कृत कृत्य हो जाता है। अब विवेकी पुरुष के चित्त की अवस्था का निरूपण करते हैं:—

तदा विवेकनिम्नं कैवल्य प्राऽग्भारं चित्तम् ॥२६॥

जन्मादि भावना की निवृत्ति होने से चित्त विवेक मार्ग को प्राप्त हुआ मोक्ष की ओर फिर जाता है। अब उस विवेकी के विघ्न और विघ्नों के कारण बताते हैं:—

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ २७ ॥

उस विवेक प्रत्यय के छिद्रों में संस्कारों से अन्य प्रत्यय होने। जब २ उस विवेक (चित्त और देहादि से पुरुष को भिन्न जानने) में छिद्र होते हैं अर्थात् बीच बीच में जब जब वह विवेक शिथिल होकर छिद्र (विघ्न) को अवसर देता है तब तब पुराने संस्कारों से अन्य अविवेक प्रत्यय उत्पन्न होते हैं। उनके त्यागने वा उनसे बचने का उपाय:—

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥ २८ ॥

उनका त्याग क्लेश (त्याग) के समान कहा गया। जैसे क्रिया योग द्वारा क्लेशों के नाश का उपाय द्वितीयपाद के आरम्भ सूत्रों में बताया है उसी प्रकार इन अन्य प्रत्ययों के नाश का भी उपाय करे। अब संस्कारों के नाशक प्रसंख्यान में भी इच्छा न रखने वाले पुरुषको धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति कथन करते हैं॥२८॥

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्यसर्वथाविवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥ २९ ॥

विवेक ज्ञान में भी फल की इच्छा से रहित योगी के निरन्तर विवेक ज्ञान के उदय होने से धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति होती है। सम्प्रज्ञात समाधि के फल रूप विवेक ज्ञान की परसीमा का नाम "धर्ममेघ" समाधि है। जिसके संस्कारों से व्युत्थान संस्कार सर्वथा दब जाते हैं। इस धर्ममेघ की भी पराकाष्ठा ज्ञान प्रसाद है वा पर वैराग्य है। जिसमें निर्बीज समाधि को पा जाता है। अब धर्ममेघ समाधि का फल कहते हैं:—

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ३० ॥

तब (धर्ममेघ समाधि से) वासना सहित अविद्यादि क्लेश तथा पुण्य पाप रूप कर्म निवृत्त हो जाते हैं। अब पूर्वोक्त समाधि सम्पन्न जीवनमुक्त के चित्त की विलक्षणता निरूपण करते हैं:—

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्याऽनन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥ ३१ ॥

अविद्यादि क्लेश तथा शुभाऽशुभ कर्मों की निवृत्ति काल में अविद्यादि सब मलों से रहित हुए चित्त के अनन्त प्रकाश से सर्व विषय परिछिन्न हो जाते हैं अर्थात् कोई ऐसा पदार्थ नहीं रहता जिसको योगी का चित्त साक्षात्कार न कर सके। अब धर्ममेघ समाधि सम्पन्न योगी के पुनर्जन्म का अभाव कथन करते हैं:—

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ३२ ॥

धर्ममेघ समाधि के उदय होने से कृत प्रयोजन हुए गुणों के कार्योत्पादन रूप परिणाम क्रम की समाप्ति होती है। अर्थात् जिस योगी के सत्वादि तीन गुण धर्ममेघ समाधि को उत्पन्न

करके कृतकृत्य हो चुके हैं। उसके लिये पुनः देह इन्द्रियादि संघात को उत्पन्न नहीं कर सकते। तात्पर्य यह है कि धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति से योगी का पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् ऐसे मुक्त पुरुष के लिये त्रिगुणात्मक प्रकृति का सम्बन्ध नहीं रहता। केवल कैवल्य दशा में ब्रह्मानन्दानुभव रहता है। अब गुणों के परिणाम क्रम का निरूपण करते हैं ॥ ३२ ॥

क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः॥ ३३॥

क्षणों के सम्बन्ध वाली तथा परिणाम की प्राप्ति से अनुमान करने योग्य गुणों की अवस्था विशेष को क्रम कहते हैं। जैसे सौ वर्ष की मनुष्य की आयु में पहिले क्षण को पूर्वान्त और अन्तिम क्षण को अपरान्त कह सकते हैं। इस सूत्र में परिणाम शब्द से १-धर्म परिणाम २-लक्षण परिणाम और ३-अवस्था परिणाम को एक द्रव्य परिणाम के अन्तर्गत समझ कर कहा गया है। अब गुणों की और उनके परिणामों की समाप्ति पर कैवल्य का लक्षण करके ग्रन्थ समाप्त करते हैं:—

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ३४ ॥

पुरुषार्थ से रहित बुद्धि आदि द्वारा परिणत गुणों का अपने कारण में लय होने को कैवल्य कहते हैं (वा) अथवा अपने शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठारूप चेतन स्वरूप पुरुष की बुद्धि के सम्बन्ध से रहित होकर अपने स्वरूप में स्थित होना कैवल्य है, (इति) शब्द शास्त्र की समाप्ति का बोधक है।

॥ इति योगदर्शन भाषानुवादे चतुर्थः कैवल्यपादः समाप्तः ॥

* समाप्तश्चायंग्रन्थः *

The 'Yogaprachark' Benares. Reg. No. A. 1866.

मुद्रक—महाबीर प्रसाद, नेशनल प्रेस, बनारस कैण्ट।